अट्टहास

राजकुमार सचान 'होरी'



[redacted]

अन्तर्द्वन्द्व

(काव्य संग्रह)



राजकुमार सचान 'होरी'

प्रकाशक :

अशोक प्रकाशन

पटौदी हाउस, दरिया गंज, दिल्ली–2



[redacted]

विवंक्षित

पुस्तक
अन्तर्द्वन्द्व

कवि
राजकुमार सचान 'होरी'

कम्पोजर्स
क्विक प्रिन्ट्स, C-111/1, नारायणा-1, नई दिल्ली-28, ✆ 5434288

मुद्रक
प्रिन्स आफसेट प्रेस 1510, पटौदी हाऊस, दरिया गंज दिल्ली-2

प्रकाशक
अशोक प्रकाशन, पटौदी हाउस, दरिया गंज, दिल्ली–2

वितरक
श्री भगवत बुक डिपो पुरानी तहसील मेरठ शहर

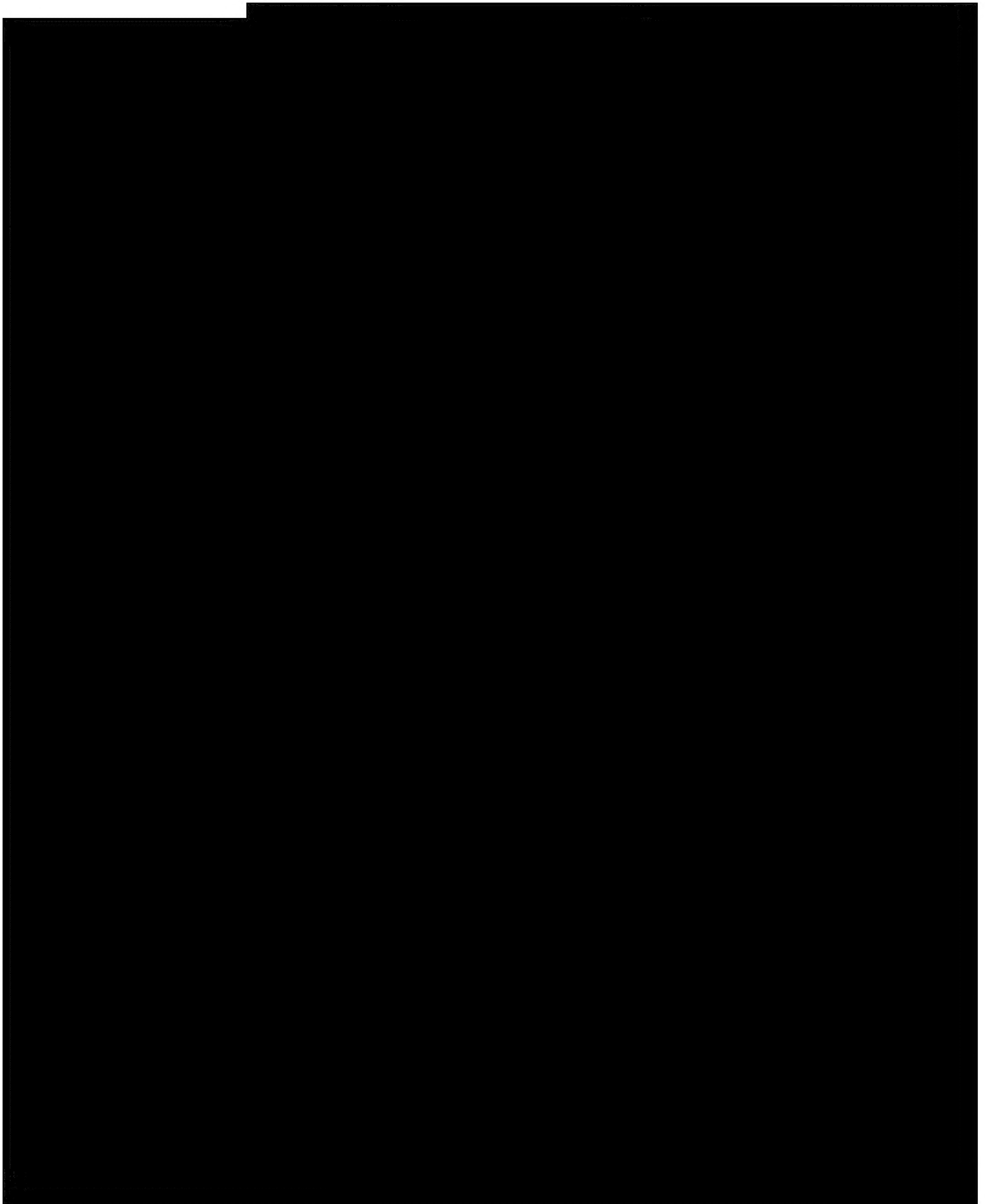
संस्करण
प्रथम 1991

मूल्य : पचास रुपए

अन्तर्द्वन्द्व

सम्पर्क : कवि : बसन्त बिहार, पिकनिक स्पाट रोड, फरीदीनगर, लखनऊ (उ०प्र

Antardwandwa (Poems) by Raj Kumar Sachan 'Hori' Rs. 5



अन्तर्द्वन्द्व

[redacted]

यह काव्य संग्रह

समर्पित है

अग्रजा भगिनी

जो माँ के, मेरी अल्पायु में, स्वर्गवासी होने पर

बहन और माँ का अकथनीय प्यार, प्रेरणा....

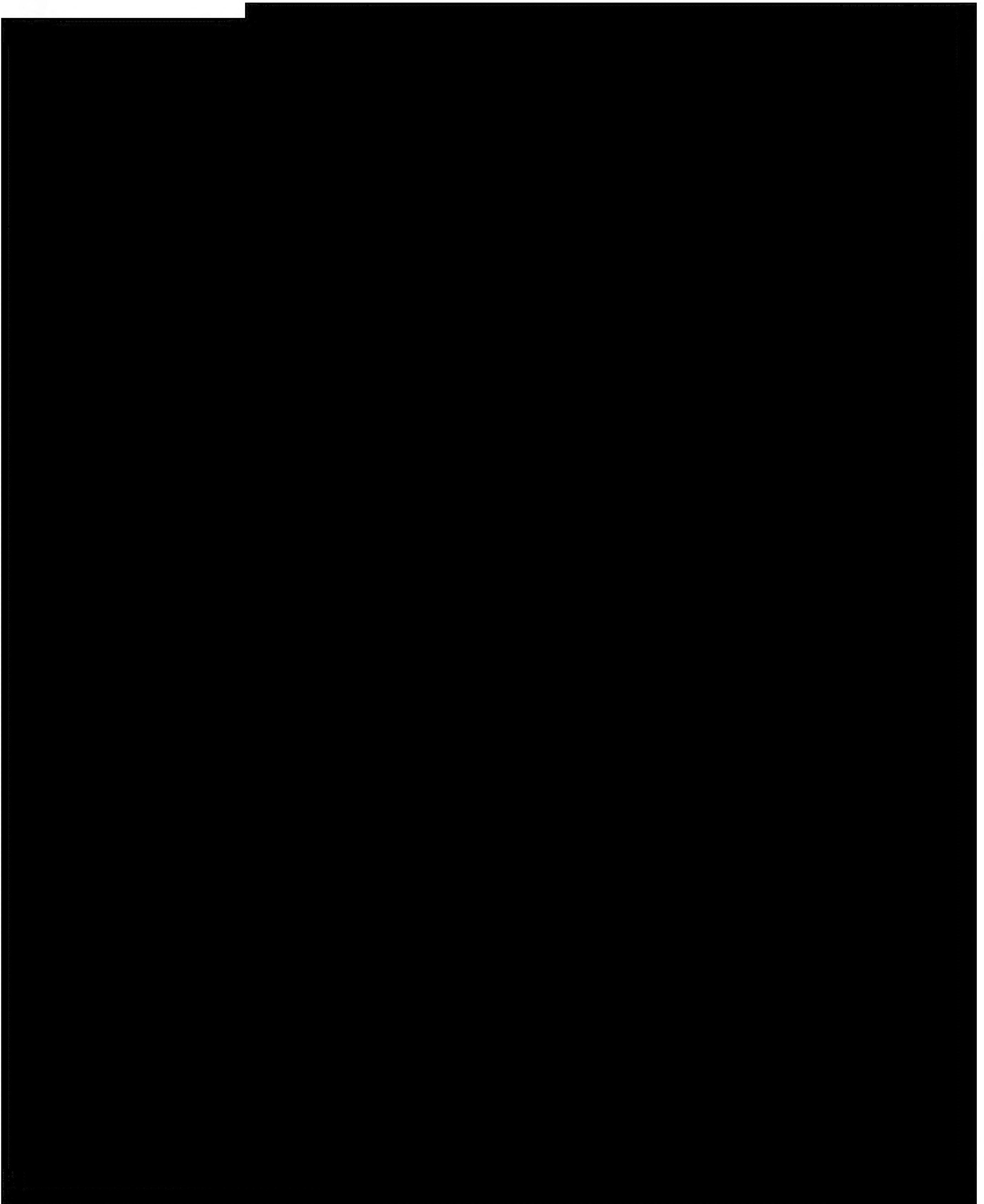
देकर

स्वयं युवावस्था में ही

अनन्त यात्रा को चली गयी

पूज्यनीया स्वर्गीया रामवती सचान

की स्मृति को



अन्तर्द्वन्द्व

राजकुमार सचान 'होरी'

[redacted]

प्राग्वाक्

'हम कहाँ?' व्यंग्य, हास्य कविताओं के संग्रह के पश्चात् मैं अपनी व्यंग्येतर कविताओं के संग्रह 'अन्तर्द्वन्द्व' को आप सुधी पाठकों, सुविज्ञ समीक्षकों, समालोचकों, सरस्वती सुत सुकवियों और हिन्दी सहित उन अनेक भारतीय भाषाओं के वरदपुत्रों जो अपनी मातृभाषाओं की घोर उपेक्षा में गर्व और श्रेष्ठता का भाव रखते हैं; काव्यमंचों तक आने वाले अनगिनत स्रोताओं और इस देश के असंख्य अपाठकों (जो इस देश की स्थायी नियति हैं) के कर कमलों में प्रस्तुत कर रहा हूँ।

मैं यहाँ यह निवेदन करना समीचीन समझता हूँ कि कविताओं की विधाओं के विभाजन में मेरे विचार किञ्चित् हट कर हैं। कालों, रसों, छन्दों, मंचीय, साहित्यिक आदि आदि नामों के आधार पर विभाजन या वर्गीकरण — जैसे जैसे समाज में वैविध्यपूर्ण विकास जो विसंगतियों से लबालब हो और मानव के अन्तः तथा बाह्य जगत में शाश्वत द्वन्द्व को जन्म देता हो; हो तो वे प्रारम्भ में मन्थर और पश्चात् तीव्रतर गति से बेमानी प्रतीत होने लगते हैं। मैंने अपने 'हम कहाँ?' काव्य संग्रह के निवेदन में संकेत किया था कि किन कारणों से व्यंग्य बढ़ता जाएगा समाज और साहित्य दोनों ही क्षेत्रों में। अतएव जहाँ सुदूर पूर्व साहित्य में व्यंग्य दीपक लेकर ढूँढ़ने से मिलता था वहीं देखते-देखते वर्तमान में आसपास व्यंग्य के अपेक्षित दर्शन होने लगे हैं और भविष्य में कोई आश्चर्य नहीं कि यही वर्गीकरण — व्यंग्य और व्यंग्येतर; प्रतिष्ठित समालोचक, साहित्य लेखक और कवि करने लग जाएं। जो कविगण और स्रोता काव्यमंचों से जुड़ें हैं वे मंचों में व्यंग्य की छटा देखकर और यह देखकर कि एक पलड़े में व्यंग्य और हास्य तथा दूसरे में अन्य समस्त; मेरी इस बात से अभी से सहमत होंगे। लेकिन मेरा स्पष्ट मन्तव्य है कि व्यंग्य को हास्य समझना या उसी तक सीमित करना या तदनुसार आरोपित करना अत्यन्त अनुचित है। व्यंग्य का क्षेत्र इतना विशाल है कि इसमें

[redacted]

सभी रसों, अलंकारों, भावों, छन्दों, विचारों का समावेश होना ही चाहिए– तभी व्यंग्य व्यंग्य है और तभी उक्त वर्गीकरण।

'अन्तर्द्वन्द' में मैंने अपनी अन्य रचनाएं संकलित की हैं जिन्हें आप कोई भी नाम देते रहे हों– कबीर से लेकर आज तक के युग– प्रयोगवादी, अकविता, गीत, नवगीत, जनकविता और न जाने क्या-क्या– इसकी कल्पना और गणित आप पर ही छोड़ता हूँ। हाँ, यह अवश्य कहूँगा (ताकि कतिपय विचारक, विद्वान यह न समझ लें कि व्यंग्य तो इन संकलित कविताओं में भी है) कि व्यंग्येतर रचनाओं में व्यंग्य के गौण दर्शन तो हो सकते हैं लेकिन उसका प्राधान्य नहीं। फिर शब्द/काव्य की तीन शक्तियों यथा– अभिधा, लक्षणा, व्यंजना में जब व्यंजना शक्ति प्रधान हो जाती है तभी व्यंग्य होता है अन्यथा नहीं। इस दृष्टि से इस काव्य संग्रह की रचनाओं का आप परीक्षण करेंगे, यही निवेदन है।

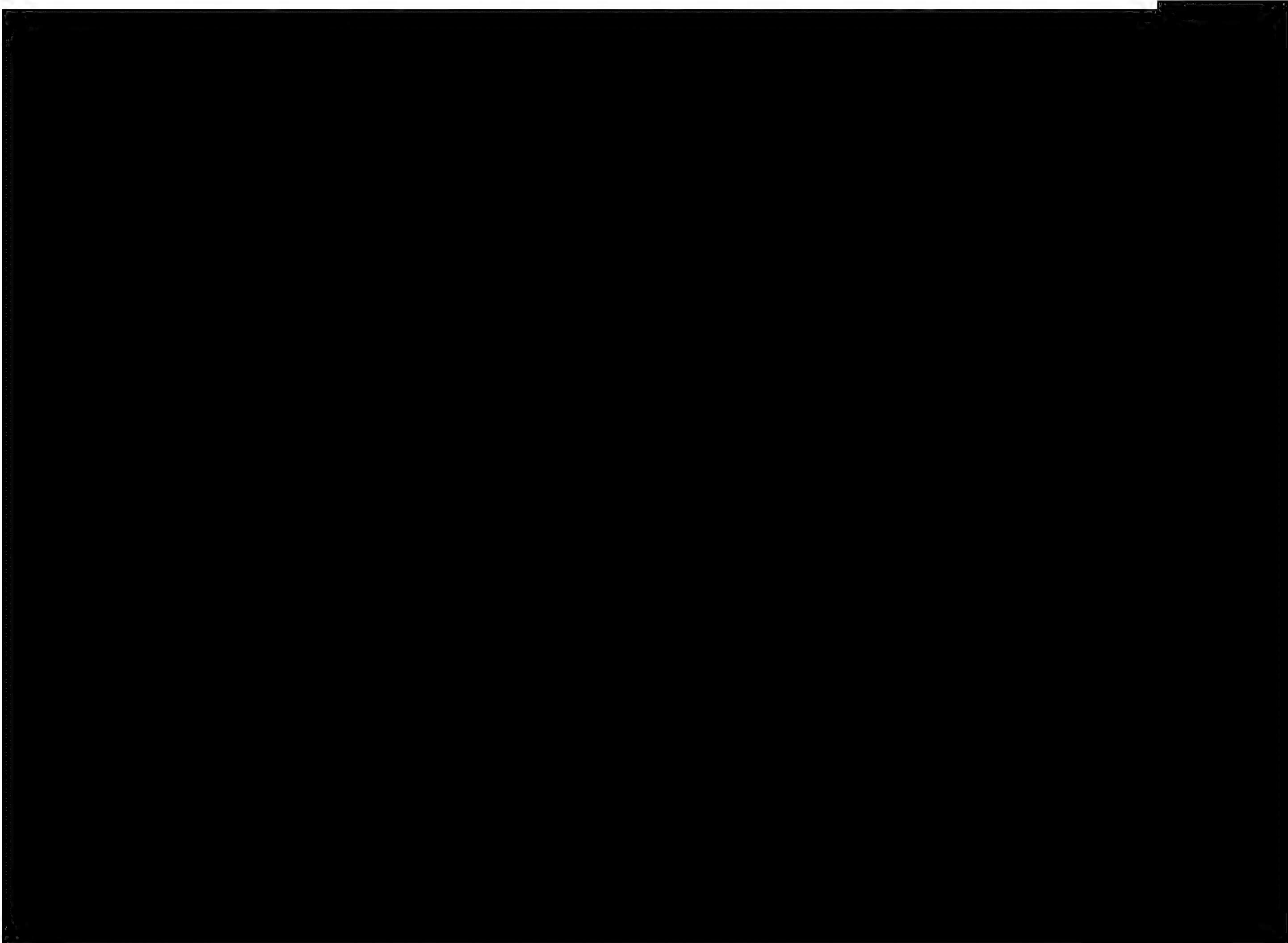
कविता मानव के मस्तिष्क पक्ष का विषय नहीं है अपितु यह विषय है हृदय पक्ष का। यह तो मैं नहीं कहता कि कविता मस्तिष्क से एक दम निरपेक्ष हो जाती है परन्तु वह हृदय पक्ष के ही अति सन्निकट होती है– यह निर्विवाद तय है। मस्तिष्क के निकट गद्य होता है। परन्तु पूर्व युगों की अपेक्षा माना कि पद्य का झुकाव मस्तिष्क की ओर कुछ बढ़ा है, लेकिन वह रहेगा तो मूलतः हृदय पक्ष का ही विषय। लेकिन इस द्वन्द्व में प्रथम द्वन्द्व एक यह उभरा (कदाचित् निराला के समय से ही) कि पद्य को गद्य सा बना दिया जाए– अर्थात् हृदय से मस्तिष्क की ओर यात्रा। इस यात्रा में सहयोगी बने– क्लिष्ट, संश्लिष्ट शब्द; आड़े तिरछे वाक्य; अप्रयुक्त, अपरिभाषित, अप्रचलित उपमानों का भानमती पिटारा और कभी-कभी ऐसे बौद्धिक विलास के खेल जिनमें बुद्धि के भ्रमोत्पादक प्रयोग हों। विशेषकर पत्रों, पत्रिकाओं, समीक्षकों और स्वनाम धन्य साहित्यकारों के लिए तो कुछ इसी प्रकार के मानदण्ड ही बन गए स्तरीय रचनाओं को नापने, कसने के लिए। परिणाम वही दुखद। कविता से पाठक कटते गए, कट रहे हैं और लगातार कटते रहेंगे। परन्तु यदि हमने अपनी धारा नहीं बदली तो पाठक बदल देंगे। मंचीय और कथित साहित्यिक कविता में जो दूरी बढ़ती जा रही है वह उक्त रोग का ही लक्षण है। मंचों के वे स्रोता जो कविता सुनते, समझते ही नहीं जीते भी हैं जब पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित कविताओं को पढ़ते हैं तो मेरी न मानिए सर्वेक्षण करा लीजिए, उन्हें गश आ जाता है। प्रथमतः अर्थ ही समझ में नहीं आता और



अगर बहुत माथा पटका तो वाहरे आधुनिक श्लेष एक दो नहीं अनगिनत अर्थ निकलते चले जाते हैं (पहले एक दो अर्थ ही बड़ी उपलब्धि होती थी)। अब पाठक अर्थों के चक्रव्यूहों में फँसा द्वार पर द्वार तोड़ता है तो भी हद से हद अभिमन्यु बन पाता है, फँसना तो उसकी नियति है जैसे– अन्तर्द्वन्द्वों, बहिःद्वन्दों की छटपटाहट से निकलकर जीवन की खोज में जब वह कविता की शरण में जाता है तो वहाँ भी भाव रसानुभूति तो नहीं अपितु दिल की तरलता के स्थान पर मस्तिष्क की कठोरता के दर्शन होते हैं। द्वन्द्वों की वही दुन्दुभी। तब वह भागता है नालों परनालों की ओर, फिल्मों, फुटपाथों की ओर। पाठक का अन्तर्द्वन्द्व भी तो मेरा अन्तर्द्वन्द्व है।

मेरा स्वयं का अनुभव है कई कवियों के साथ कि जब मैंने पूछा कि उनकी अमुक रचना का क्या अर्थ है तो वे अनेक अर्थ बताते चले गए। मेरी जिज्ञासा फिर भी न शांत हुयी और मेरे प्रश्न व प्रतिप्रश्न जारी रहने पर वे फुसफुसा कर कान में बोले– 'सही तो यही है कि इसका कोई अर्थ नहीं, हो भी तो मुझे स्वयं नहीं मालूम। मैंने तो यूंही, ऐसे ही जो मन में आया लिख दिया कोशिश यह की कि शब्दों का कोई तालमेल न हो। अब जब लोग विशेषकर समीक्षक, सम्पादक रचना को स्तरीय कह रहे हैं तो मेरे लिए तो गर्व का विषय है मैंने अंतिम प्रश्न किया– 'मंचों में जाते हैं?' वे बोले– वहाँ कौन सुनेगा, समझेगा हूट हो जाएंगे, साहित्यकार का मुखौटा अलग से उतर जाएगा।' तो ऐसी स्थिति है इस तरह के रचनाकारों और रचनाओं की। एक कार्य ऐसे कवि अवश्य करते हैं– निमंत्रित, प्रतिष्ठित, स्तरीय स्रोताओं को बुलाकर रचनाएं पढ़ने का। छप तो रहे ही हैं सुनाने की भड़ास भी निकाल ली।

हमें बीमारी को समझना होगा। आइए साहित्य के इतिहास में चलें। कबीर, सूर, तुलसी, मीरा, रहीम, रसखान आदिक कवियों को ही लें। कौन कवि ऐसी रचना करता था जिसकी रचनाओं को शब्दों का खेल कहा जाये या कि किसने क्लिस्ट शब्दों का अधिकाधिक प्रयोग किया। सत्य तो यह है उन महान कवियों की भाषा इतनी सरल थी कि अनपढ़, निरक्षर जो स्वयं उनकी रचनाओं को पढ़ नहीं सकते दूसरों से सुनकर बिना अर्थ पूछे स्वयं आत्मसात करते चले गए और आज भी समझ रहे हैं। यह है कविता। क्योंकि शब्द स्वंय कविता नहीं होते। वाद्ययंत्र स्वयं संगीत नहीं होते। यहाँ यह भी उल्लेख करना आवश्यक



प्रतीत होता है जो विश्व के अन्य देशों विशेष कर यूरोपीय व पश्चिमी देशों के विद्वान हमारे साहित्य से अपेक्षा करते हैं। वे हमारे पास आते हैं प्राचीन संस्कृति के दर्शन करने जो विश्व के आकर्षण का केन्द्र रही और आज भी है। उन दर्शनों के दर्शन के लिए जो वेदों, उपनिषदों, दर्शनशास्त्रों, गीता, रामायण, महाभारत में भरे पड़े हैं। पाश्चात्य विद्वान भौतिकवाद से ऊबे, थके-दौड़े चले आते हैं। 'हरे राम हरे कृष्ण' का संगीत बजाते गीत गाते विश्व में भारत के उच्चतम अध्यात्मवाद से कुछ सीखने परन्तु जब देखते हैं कि वर्तमान में भारत के साहित्यकार स्वयं अपने अतीत को भूल पश्चिम के साहित्य-विशेषकर कविता की, भोंड़ी व भोथरी नकल कर रहे हैं तो उन्हें घोर आश्चर्य और कष्ट होता है।

उपरोक्त विवेचना में मेरा मन्तव्य है– प्रथम वर्तमान साहित्य को फिर अपनी जड़ों की ओर लौटना चाहिए, द्वितीय– गद्य को तो कठिन, दुरुह, मस्तिष्क प्रधान भाषा (यदि आवश्यक हो) दी जाए परन्तु कविता को किसी भी दशा में नहीं। हिन्दी कविता को मात्र साहित्यिक आवरण देने के लिए संस्कृत, फारसी, अरबी आदि भाषाओं के शब्दों से लादा न जाए। सोचिए, यदि तुलसीदास ने अपने समय के काशी के पंडितों की बात मानकर अपनी रचनाएं संस्कृत में लिखी होतीं, यदि रामचरितमानस हिन्दी में न होती? क्या होता हिन्दी के पास? हिन्दी से कबीर, तुलसी, सूर, रहीम, रसखान, मीरा आदिक ऐसे ही और सरल कवियों को निकाल दीजिए फिर क्या बचेगा हिन्दी कविता के पास? समीक्षकों के पास भले ही कुछ ग्रन्थ, रचनाएं तब भी बच जाएं लेकिन देश की आत्मा– असंख्य नगरीय व ग्रामीण जनता के पास शून्य के सिवा कुछ न बचेगा।

मेरा नम्र निवेदन है कि काव्य मंचों को साहित्य की ओर और कथित साहित्यकारों को काव्यमंचों की ओर यात्रा करनी ही होगी, यदि हिन्दी कविता को विश्व में जीवित करना और जीवन्त बनाना है। विस्तृत सन्दर्भों में यदि देश की आत्मा को पहचानना है। कवियों को, समीक्षकों को इस अन्तर्द्वन्द्व से गुजरना ही होगा। विज्ञान में, जैसे, अपने ही ज्ञान और तकनीक का प्रयोग करके राष्ट्र उठ पाते हैं न कि नकल करके वैसे ही साहित्य में।

यहाँ मैं यह निवेदन करना भी उपयुक्त और आवश्यक समझता हूँ कि कविता (गद्य में नहीं) में भाषा सरल करने पर ही मेरा बल है न कि भावों व रसों

[redacted]

से समझौता करने पर। अपितु मेरा स्पष्ट मत है कि भावों, रसों, छन्दों को तो ऊपर और ऊपर अनंत तक उठना चाहिए। लेकिन मात्र भाषा को क्लिस्ट करके तथा अस्पष्ट भावों व वाक्यों की रचना करके कोई दावा करे कि वह भावों, रसों, विषयों में उत्थान कर रहा है और इस भांति कविता को नए, ऊंचे आयाम दे रहा है, तो मैं कहूँगा कि वह स्वयं को और कविता को धोखा दे रहा है। ऐसा मेरा विचार है, अन्तर्द्वन्द्व है।

सरल भाषा में कविता का पक्षधर होने के कारण यह आशय न लिया जाए कि मैं व्याकरण के बन्धनों को नहीं मानता। व्याकरण तो आवश्यक है। भाषा की शुद्धता का भी पक्षधर हूँ पर सरलता के साथ, प्रवाह के साथ। परन्तु 'कविता वही जो स्वयं को ही समझ में न आए'– इस मारक बन्धन से मुक्ति आवश्यक है। भाषा, शब्दों की सरलता पर चोट कर कुछ कवि साहित्यकार ऐसी सरल कविताओं को जो सीधे पाठकों, स्रोताओं से जुड़ जाती हैं, मंचीय कविता कहकर एक प्रकार की गाली देकर अपनी कुंठा (जो मंच में अयोग्य सिद्ध होने से जन्म लेती है) को ही प्रकट करते हैं। जबकि मंचों में कवि की ठीकठाक और त्वरितगति से पहचान होती है। विधा कोई भी हो। लेकिन मंच से मेरा आशय फूहड़पन या सस्तेपन से कदापि नहीं है। मैं तो फिर एक और आन्दोलन की बात करता हूँ जो तुलसीदास ने पंडितों (विद्वानों) के विरुद्ध आरम्भ किया था और संस्कृत में न लिख कर (उस समय की विद्वानों की भाषा) आम हिन्दी में लिखा। आज स्थिति यह है कि कतिपय पत्र, पत्रिकाओं के संपादकादि छपने के लिए प्राप्त रचनाओं में यह देख लेते हैं कि रचना समझ में आ रही है या नहीं। अगर नहीं तो स्तरीय मान ली जाएगी और छाप दी जाएगी। वास्तविकता तो यह है कि वर्तमान में कबीर, तुलसी, सूर, मीरा प्रभृति कवि होते और वर्तमान समीक्षकों, पत्र-पत्रिकाओं को अपनी रचनाएं दिखाते तो स्तरीय नहीं माने जाते। इस अन्तर्द्वन्द्व से दो चार होना पड़ेगा ही यदि हिन्दी कविता को बचाना है।

इस काव्य संग्रह के विषय में इतना तो निवेदन किया ही था कि इसमें मेरी व्यंग्येतर रचनाएं हैं। 'हम कहाँ?' काव्य संग्रह जो गतवर्ष प्रकाशित हुआ था में व्यंग्य तथा हास्य रचनाएं थीं। 'बबूल की छाया में' काव्य संग्रह में व्यंग्य व हास्य रचनाएं जो 'हम कहाँ?' के पश्चात् की हैं प्रकाशित हो रही हैं। 'अन्तर्द्वन्द्व' में मैंने जीवन के विभिन्न झरोखों में झांकने का प्रयास किया है। इसमें छंद बद्ध व



छन्दमुक्त दोनों प्रकार की कविताओं को देने का प्रयत्न किया है। अपनी कविताओं के विषय में स्वयं मैं कुछ भूमिका में नहीं कहता रहा हूँ। इस संग्रह में भी अपनी परम्परा निभा रहा हूँ। सब कुछ आप पर ही छोड़ रहा हूँ। मेरा स्पष्ट मत है कि कवि और पाठक या स्रोता के मध्य कोई भी मध्यस्थ नहीं होना चाहिए। यहाँ तक कि कवि भी नहीं, भूमिका लेखक के रूप में भी नहीं। हाँ, प्रत्येक कविता और उनके एक-एक शब्द पर आपके प्रश्नों, आपकी जिज्ञाशाओं का उत्तर देना अपना सौभाग्य मानूंगा।

मैं 'अन्तर्द्वन्द्व' के प्रकाशन के लिए प्राप्त सहयोग हेतु अपने मित्रों का आभारी हूँ और विशेषकर आभारी हूँ अपने पत्रकार और कवि मित्रों का। ऋणी हूँ इस प्रशासनिक सरकारी सेवा का जिसमें जीवन के वह नए अनुभव प्राप्त होते हैं जो कदाचित् सम्भव न हो पाते। अपनी अर्द्धांगिनी का भी आभारी हूँ जो जीवन को क्षण-क्षण जीने और कुछ करते रहने के योग्य बनाती है।

अन्त में इस निवेदन के साथ कविताएं सौंप रहा हूँ कि मेरी त्रुटियों को क्षमा तो करें परन्तु जितनी धुनाई और धुलाई आप कर सकें मैं उतना ही आपका आभार मानूंगा।

राजकुमार सचान 'होरी'

तिथि अमावस्या दिन शनिवार
संवत २०४७
१६ मार्च १९९१ ई०
बसन्त विहार, पिकनिक स्पाट रोड
फरीदीनगर, लखनऊ (उ० प्र०)





[redacted]

काव्य-क्रम

[redacted]



[redacted]

मैं अन्तर्द्वन्द्व जिया करता हूँ

सत्ता में रहने वाले तो, सतरंगी दुनियां जीते हैं।
सत्ता-मद-रस में डूबडूब, वे सोम रसों को पीते हैं।।
सत्ता में रहते भी मेरे, दिन रात्रि द्वन्द्व में बीते हैं।
सागर में घट ज्यों पर घुट-घुट, मेरे अन्तर्घट रीते हैं।।

सत्ता-शासित सम्बन्धों की चादर मैं आह सिया करता हूँ।
जीवन अहर्निश प्रतिपल बस, मैं अन्तर्द्वन्द्व जिया करता हूँ।।

सरस्वती सुत हूँ सो उसके, सर्व सुतों सहकार करूँ।
पीता नहीं कभी भी मैं सो, अधिसंख्य सुतों आचार डरूँ।।
कवि अधिकारी की अकथ दूरी, मैं अथक हटा लाचार फिरूँ।
दो पाटों के दायित्वों बिच, पिस पिसकर मैं साकार मरूँ।।

तिस पर मैं अन्तर्मन्थन से, अमृत दे विष पिया करता हूँ।
जीवन अहर्निश प्रतिपल बस, मैं अन्तर्द्वन्द्व जिया करता हूँ।।

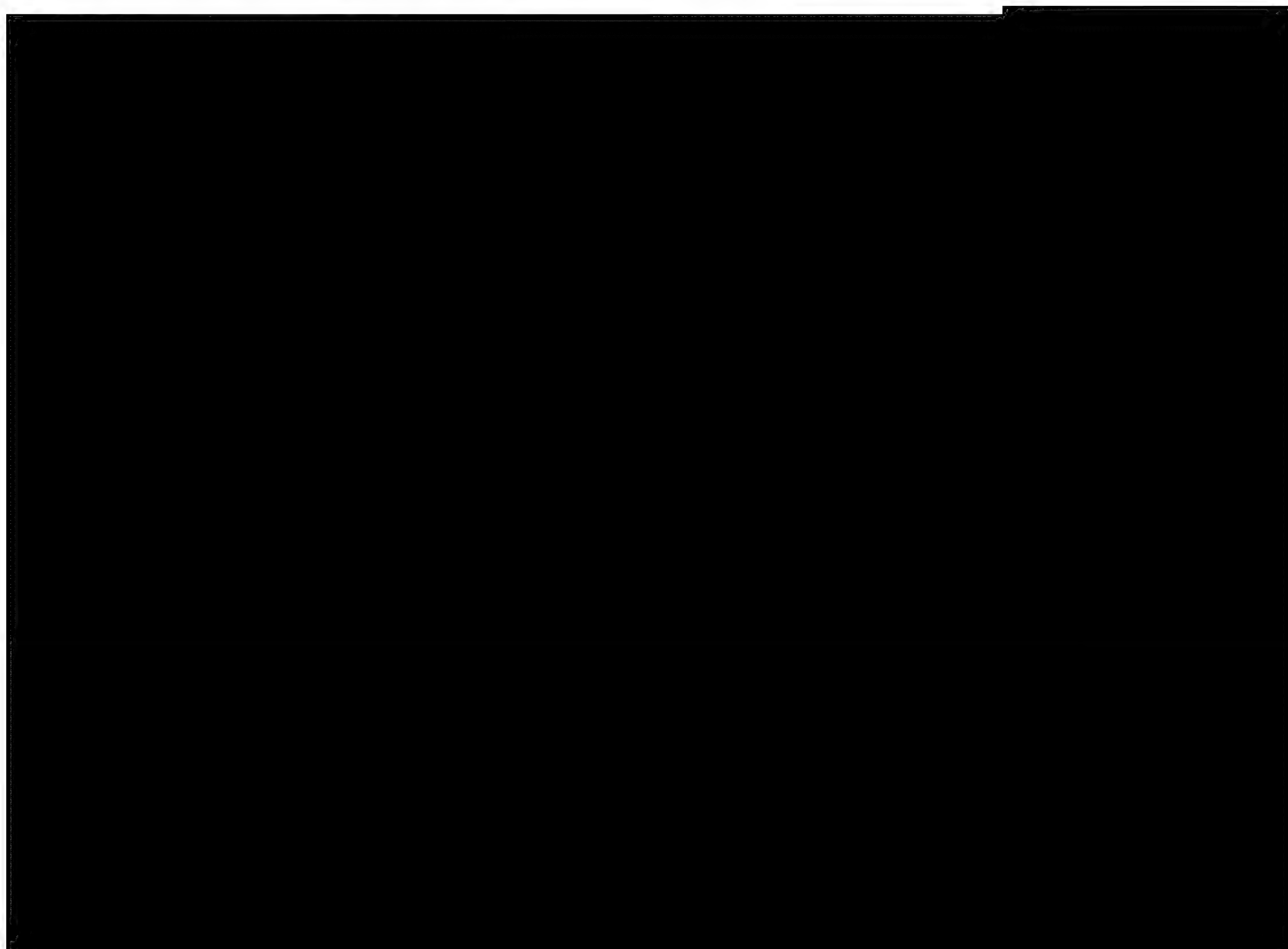
[redacted]

शोषित शासित पीड़ित दुखिया, जनता को कष्ट कौन देता?
माटी गूँधी जाती शाश्वत, माटी का मोल कौन लेता?
नेतृत्व राष्ट्र को जनहित दे, ढूँढू मैं कहां कौन नेता?
कलियुग गाँधी का मौन यहाँ, तू बता राम के ओ त्रेता!

सर्वत्र बने सर्वस्व सुखी, ऊँ से अनुबन्ध किया करता हूँ।
जीवन अहर्निश प्रतिपल बस, मैं अन्तर्द्वन्द्व जिया करता हूँ।।

विद्वता और नृपता में क्या, कदाचित् तुलना हो सकती है?
सर्वत्र ही नहीं सर्वकाल, विद्वता मृत्यु भी धो सकती है।।
ब्रह्म और मैं एक सदा, पहचान कभी क्या खो सकती है?
रचनाकारों के मध्य कभी, बीज मृत्यु क्या बो सकती है?

शाश्वत अनन्त जीवन के हित, स्वमन में स्वप्न लिया करता हूँ।
जीवन अहर्निश प्रतिपल बस, मैं अन्तर्द्वन्द्व जिया करता हूँ।।



आत्म दीपोभव

अन्धकार
भ्रष्टाचार
दुराचार
व्यभिचार
अनाचार
हाहाकार
चीत्कार
चारों ओर।
फिर भी हम
लाचार।
ज्योतिर्पथ
तिमिराच्छादित
हम हो निरूपाय
हम हो रहे विह्वल
विचलित।
एक मात्र पथ-
अवशेष
''आत्मदीपोभव''

[redacted]

चन्द शेअ्र

[१]

हम कहाँ इनको खुद का पता है नहीं,
पर खुदा का पता जानते ये सभी।
यदि खुद का पता ये तनिक जान लें,
बन्दों बन्दों में झगड़े न हों फिर कभी।।

[२]

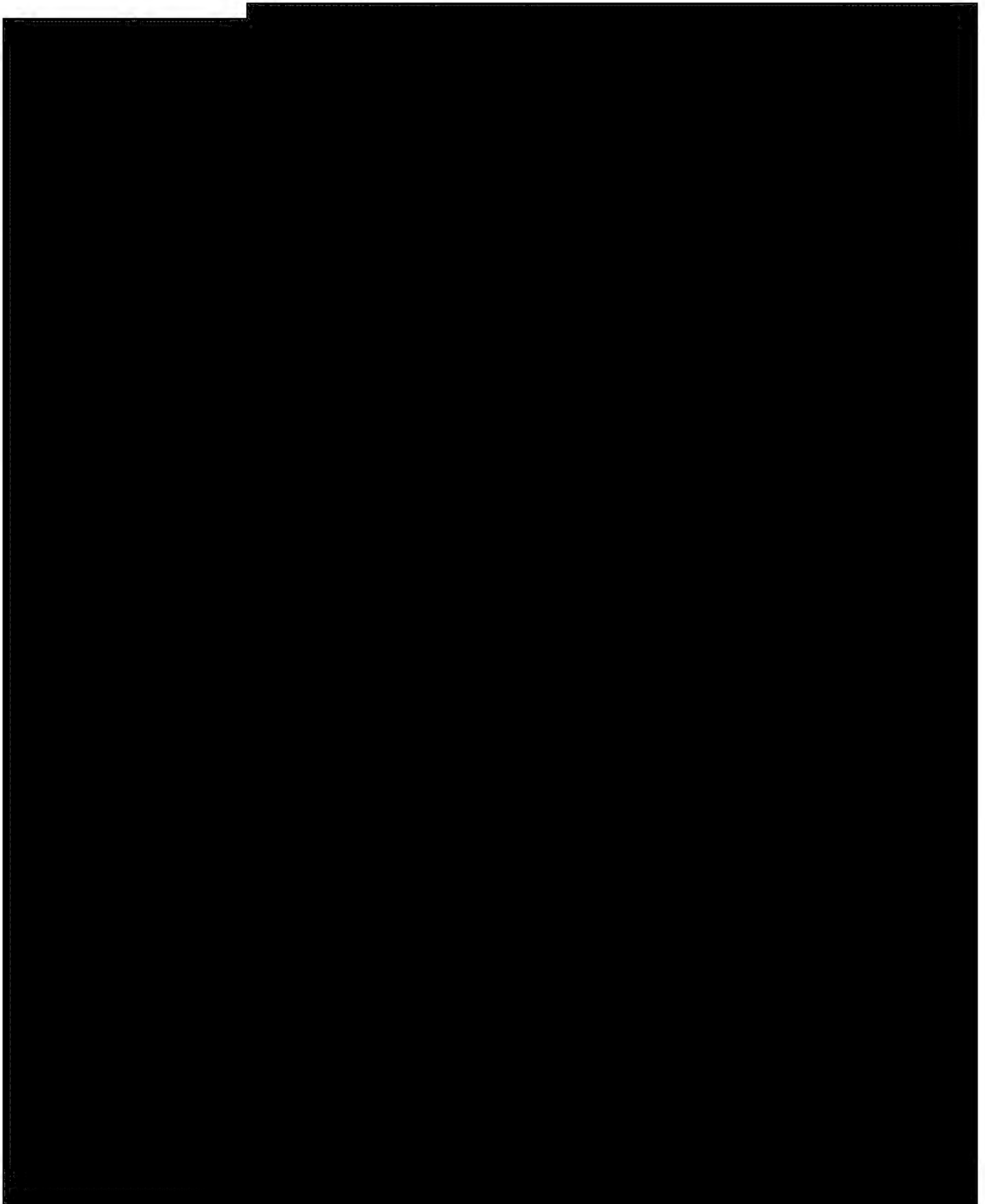
कल से सीखो सबक वह कल फिर काम आएगा।
पर आज को भूले अगर कल फिर कल हो जाएगा।।

[३]

मेरी आवाज गर सुन सको तो तुम भी सुन लो,
मेरी तरह तुम्हें भी मर मर के जीना पड़ेगा।।

[४]

ऐ बावले तू मुझे ढूँढ़ता कहाँ कहाँ?
दिल की खिड़की खोल औ झांक कर देख ले।।



[redacted]

[५]

ओ कलम के सिपाही! तलवारों से हारता है क्यों,
तवारीख है गवाह कलमें जीती हैं सदा तलवारों से।।

[६]

तुम हिन्दू हो तो जाओ हिन्दुत्व की रक्षा करो;
लेकिन क्या जाना है कभी कि हिन्दुत्व क्या है?
सिन्धु के आर पार पूरब में सभी,
चाहे जिस मजहब के हों वे सभी हिन्दू हैं।।

[७]

आदमी पर राज करने के तरीके हैं बहुत।
धर्म उनमें एक है क्या तुम्हें मालूम है।।

[८]

धर्म निरपेक्षता मजबूत होगी तो तभी,
जब बहुसंख्यक अल्पसंख्यकों को गले लगाएंगे।
और केवल तभी जब अल्पसंख्यक भी बहुसंख्यकों की पीठों पर,
पंजाब, कश्मीर की तरह नहीं छुरे चुभाएंगे।।

[९]

धर्मनिरपेक्षता जरूरी तो है देश के लिए,
लेकिन कट्टर अल्पसंख्यक भी धर्म निरपेक्ष तो हों।
राम को स्वीकार कर देश से जुड़ें वे भी,
पाकिस्तान परस्ती से वे मुक्त भी तो हों।।



[redacted]

[१०]

मिट्टी में मिलो तुम इसके पहले एक पल जी लो जरा,
जिन्दगी का क्या भरोसा आज है कल हो न हो।
जिससे तमाम दुनियाँ याद करती ही रहे,
कौन जाने अगला जीवन मनुष्य का फल हो न हो।।

[११]

जिन्दगी को यदि जिया भीड़ से होकर अलग,
तो निश्चय ही दुनियाँ में आप नाम कर जाएंगे।
कष्ट तो होंगे बहुत वर्णन भी जिनका है कठिन,
पर राम, मुहम्मद, ईशा भी तभी बन पाएंगे।।

[१२]

पंजाब के उग्रवादियो! खालिस्तान चाहिए तुम्हें,
अरे सारा का सारा हिन्दुस्तान ही तुम्हारा है।
सिख तो हिन्दू हैं और हिन्दू सिख हैं,
पर क्या सिख पाकिस्तान को प्यारा है।

[१३]

भगवान ने इंशान को है बनाया किसने देखा?
मगर इंशान ने ही भगवान बनाया– हमने देखा है।

[१४]

शब्दों के अंबार भी लगाकर वह कह नहीं सकते,
जो बेजुबान आँखे बेजुबानी कह जाती हैं।
शब्दकोषों के सारे शब्द भी क्या कह पाएंगे वह सब,
जो दिल से कोई आँखे अनजानी कह जाती हैं।

[redacted]

कवि-कर्म

[१]
माँ सरस्वती की वन्दना
तुम कर रहे हो बार-बार,
पर मनन किया कितनी बार
पुत्र-धर्म तुम निभाते हो?

[२]
मात शारदे से याचना
तुम कर रहे हो बार-बार,
पर मनन किया कितनी बार
याचक धर्म तुम निभाते हो?

[३]
वीणा वादिनि की शुभ कामना
से गुंजा रहे हो कंठ-तार,
क्या मनन किया एक बार
क्या क्यों कैसे गुंजाते हो

[redacted]

[४]
सत्यम् शिवम् सुन्दरम् हो सृजन तेरा
सर्वजनहिताय साहित्य साधना तिहारी हो।
अहम् अर्थ लोभ मोह भय का न हो चेरा,
हिन्दी-हिन्दुस्तान गर्वभावना तिहारी हो

[५]
कवि कर्म का है वृत कठिन और कष्टों भरा,
चलना ज्यों असि धार पर, असि भी दुधारी हो।
एक ओर दुख द्वन्द्व तुझ पर धरती धरा,
दूजी ओर स्वजन एवं स्वाह भी तिहारी हो

[redacted]

शुभ-कामना

[१]

सोम सदृश्य हो शुचि, सुन्दर,
सरल सौम्य औ' सरस रूप।
मंङ्गल मंङ्गलकारक बन फिर,
वीरोचित गुण दे अनूप।।

[२]

बुद्धि बने तव बुध सी विकसित,
हो सुधिधात्री सारे जग की।
बनो बृहस्पति से, ब्रह्माण्ड-
उद्धारक, असि बन अघ की।।

[३]

उच्च शुक्र हो, तन मन सुन्दर,
पुष्पित पल्लवित परिवार रहे।
शनि दे धन वैभव विपुल, और
सुख सम्पत्ति घर द्वार रहे।।

[redacted]

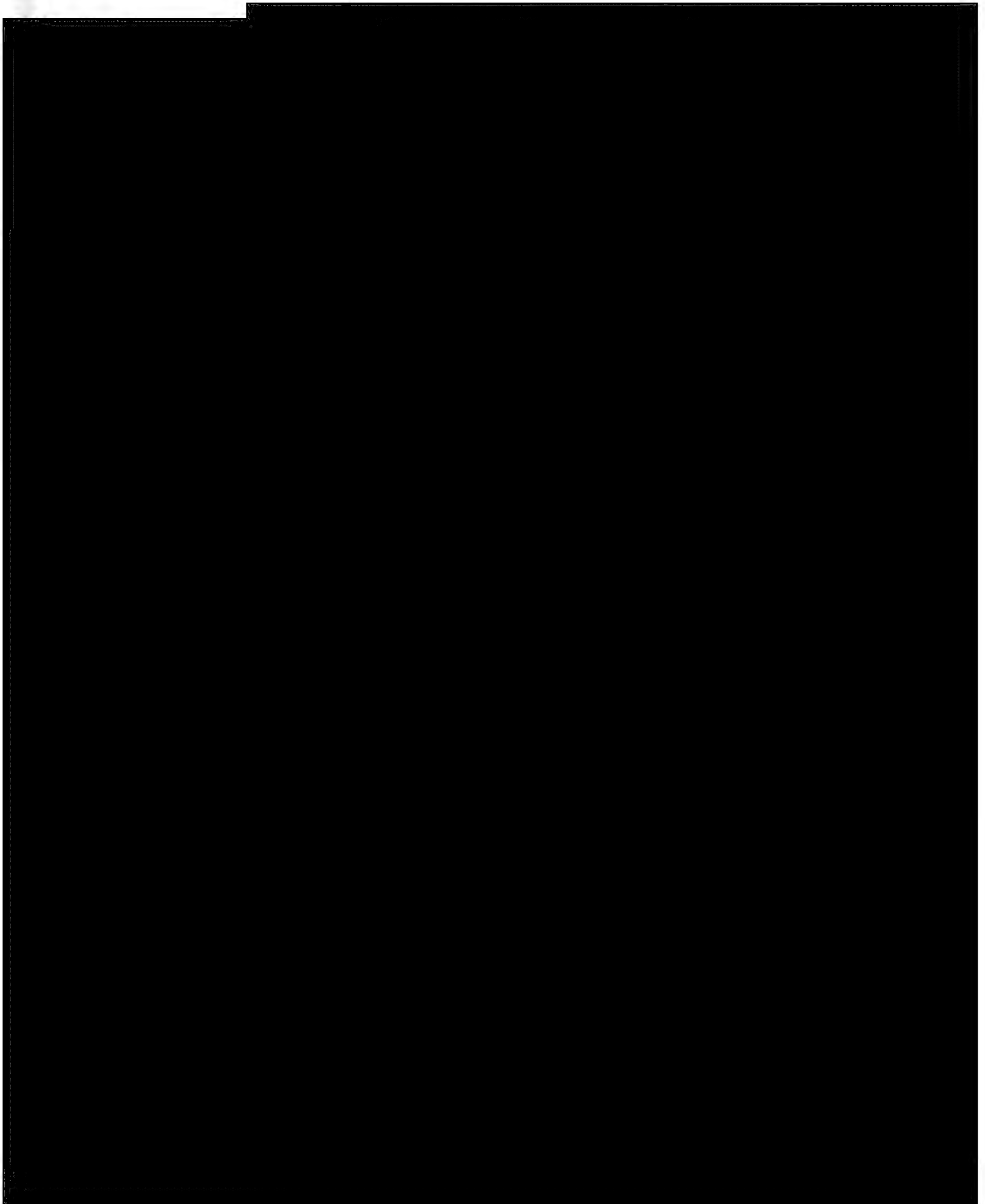
[४]

फिर रवि बन कर चमको चहुँ दिशि,
तव यश ब्रह्माण्ड महक उट्ठे।
विरुदावलि गाए स्वयं धरा,
''होरी'' मन मोर चहक उट्ठे।।

[redacted]

स्वभाषा

स्वभाषा ही बोलते हैं सदा पशुपक्षी भी
निर्जीव वाद्ययन्त्र निज स्वर ही निकालते हैं।
गाय भी रंभाती हैं, शेर हैं दहाड़ते,
बछड़े और शिशु निज ध्वनि ही निकालते हैं।।
मेघों की निज भाषा, झरनों की निज भाषा,
प्यार निज भाषा हेतु कण-कण पालते हैं।
गधे भी सुअर भी बोलें निजभाषा ही
पर हिन्दी के सुपुत्र स्वभाषा को ही टालते हैं।।



वही कविता होती है

अरे! कविता वह नहीं जो जुबाँ से कही जाय।
अरे! कविता वह नहीं जो कानों से सुनी जाय।।
कविता तो वह है जो बिन कहे ही कही जाय।
कविता तो वह है जो बिन सुने ही सुनी जाय।।
अरे! आत्मा की भाषा में शब्द नहीं होते।
केवल शब्दों के खेल कविता नहीं होते।
जब मनुज की कोई भाषा न थी,
तब भी कविता थी।
हाँ, वह महलों में घुटती न थी,
जंगलों में महकती थी।
कविता शब्दों में बाँधी भी नहीं जा सकती,
यह तो केवल निराकार भाव और अदृश्य शक्ति होती है।
जो कृष्ण ने युद्धस्थल में दिया था अर्जुन को,
वही और केवल वही कविता होती है।।

[redacted]

''जय-भारती'' से

[१]

भारत हुआ स्वतंत्र, अब परतन्त्र कोई है नहीं।
हा! भारती परतन्त्र पर, वह स्वतन्त्र अब भी नहीं।।

[२]

क्या राष्ट्र भूमि मात्र से परतन्त्र होते हैं कभी?
भूमि भाषा तथा सत्ताधीन होते हैं, तभी।।

[३]

सैंतालीस पन्द्रह अगस्त को, स्वतन्त्र केवल भू हुयी।
पचास छब्बिस जनवरी को, तन्त्र सत्ता मिल गयी।।

[४]

पर सोच औ भाषा नहीं है ये हमारे आज भी।
वर्ष बयालिस हो रहे, कहते हैं, आती लाज भी।।

कवि द्वारा लिखे जा रहे ''जय-भारती'' खण्ड काव्य के कुछ अंश।

[redacted]

[५]

अब किसी परदेश का परराज यद्यपि है नहीं।
पर हम जिसे "स्वराज" कहते सुख अभी वह है नहीं।।

[६]

अंग्रेज की भाषा अभी भी राज करती है यहाँ।
राजरानी है बनी वह देश में देखो यहाँ।।

[७]

मलयालम, हिन्दी, संस्कृत, तमिल या तेलगू।
कन्नड़, उड़िया, बंगला कोई न करता गुफ्तगू।।

[८]

हा! आज भारत देश में ये भारती दासी बनीं।
अंग्रेज भाषा उच्चतम् ये निम्नतम् जाती गिनी।।

[९]

ज्ञान निज भाषा तेरा, क्या काम आता है यहाँ?
उत्थान! हुँह, तू तोड़ भ्रम रोटी न देता वह यहाँ।।

[redacted]

[१०]

कैसे स्वतंत्र हैं? आह! जब भारती निष्पन्द है।
आत्म गौरव फिर कहाँ? जब आत्मा ही मन्द है।।

[११]

मातृभाषा बोलते, लिखते, नहीं हम आज भी।
आमरण अनशन व धरना नियति में है आज भी।।

[१२]

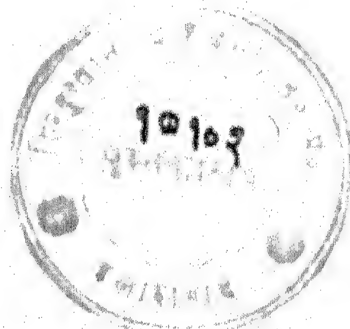
पर हमारी भारती हा! आज भी असहाय है।
भारतीय है रो रहा, पर हो रहा निरूपाय है।।

[१३]

अंग्रेज फूटा डालकर के राज करते थे यहाँ।
वे नहीं तो उनकी भाषा वही करती अब यहाँ।।

[१४]

तमिल हिन्दी लड़ रहीं तो उर्दू लड़ती है कभी।
देश की भाषा लड़ें, संकेत उसका हो जभी।।



[redacted]

[१५]

''बाल्मीकि'' कालिदास औ 'दास तुलसी' हो कहाँ?
''टैगौर'' गालिब'' आर्त सुन लो स्वर्ग में तुम हो जहाँ।।

[१६]

''भारतेन्दु''! तेरी हिन्दी, फिराक! उर्दू रो रही।
''भवभूति'' ओ तुम हो कहाँ? विलुप्त संस्कृत हो रही।।

[१७]

राष्ट्रकवि ओ ''मैथलीशरण गुप्त! तुम हो कहाँ?
रो रहा फिर राष्ट्र तेरा, भारती रोए यहाँ।।

[१८]

तमिल भी तो भारती, उर्दू भी देखो भारती।
भारत का जो भारती, इंगलिश नहीं पर भारती।।

[१९]

दक्षिण बना हिन्दी विरोधी, हिन्दू विरोधी भाव में।
दक्षिणोत्तर द्वन्द्व में हरियाली आए घाव में।।

[redacted]

[२०]

हिन्दी तमिल विवाद के जो जनक हैं इस देश में।
हिन्दी तमिल दोनों विरोधी अंग्रेज प्रच्छन्न वेश में।।

[२१]

भाषाएं यहाँ यदि देश की यदि सदा भिड़ती रहें।
भाषा पराई पोषकों की बांछे यहाँ खिलती रहें।।

[२२]

आओ पुनः इतिहास देखें हिन्दी कहाँ से है बनी।
हिन्दू कहाँ से हैं बने, यह जाति है किसने जनी।।

[२३]

हिन्दोस्ताँ कैसे बना? यह विषय विचारणीय है।
सिन्धु को ही हिन्दु कहता ईरानादि स्मरणीय है।।

[२४]

हिन्दी विरोधी है बने विद्वान हिन्दी के स्वयं।
अहमन्यता में चूर हैं औ विद्वता का है वहम।।



[redacted]

[२५]

अहम में हैं जी रहे औ वहम में हैं मर रहे।
दो पटों के मध्य ही वे स्वयं भी पिस रहे।।

[२६]

हीनता की भावना में वे कदाचित् फंस रहे।
इसलिए ही वे सदा ही दायरों में बस रहे।।

[२७]

पक्ष में व्याख्यान देते बात करते औ सदा।
पर कर्म वे ऐसे करें है फैलती जिनसे कदा।।

[२८]

पुत्र पुत्री पौत्र पौत्री पढ़ रहे कान्वेंट में।
स्वयं हिन्दी मंच पर ये मिल रहे हैं रेंट में।।

[२९]

पर को उपदेश देते कुशल हैं वे नर घनेरे।
पर स्वयं आचरण करते ऐसे नहीं कोई अरे।।

[redacted]

[३०]

दिन प्रतिदिन आचरण व्यवहार में भी औ सदा।
स्थान अंग्रेजी को मिलता देखलो फिर सर्वदा।।

[३१]

हिन्दीभाषी क्षेत्र स्वयं हिन्दी को कितना मानते?
हिन्दी जन मीडियम इंगलिश का उच्च हैं जानते।।

[३२]

हिन्दी भाषी पाठशाला अव्यवस्था त्रस्त है।
हिन्दवी ही हेय समझे हीनता से ग्रस्त हैं।।

[३३]

राष्ट्रभाषा राष्ट्र की क्यों चन्द्र बन चमके यहाँ?
यह भला संभव कहाँ जब राहु पुत्र बने यहाँ।।

[३४]

दो शब्द इंगलिश बोलकर हों उच्चता के भाव में।
डूबें उतराएं सदा पर हीनता के स्राव में।।

[redacted]

[३५]

हिन्दी भाषी क्षेत्र कहलाते यहाँ कुछ क्षेत्र हैं।
दुर्दशा हिन्दी न देखें, बन्द उनके नेत्र हैं।

[३६]

'चिराग नीचे है अँधेरा', यह कहावत हैं सुने।
चिराग ही मिलता नहीं, हैं ढूंढते हम अनबने।।

[३७]

हिन्दी की तरह ही देश की अन्य भाषाएं यहाँ।
होती उपेक्षित हैं सदा अपने सपूतों से वहाँ।।

[३८]

अंग्रेज से लोहा लिया फिर देश बाहर कर दिया।
उसकी उतरन हेतु दुर्मति! मोह क्यों पैदा किया?

[३९]

अंग्रेजी का व्यूह भी यदि चक्रव्यूह है बन गया।
तोड़ पाएगा उसे क्या स्वदेश अभिमन्यु नया।।



[redacted]

[४०]

कौरवों के जाल में अभिमन्यु गर फिर फँस गया।
परिणाम सबको ज्ञात है दृष्टांत यह नहिं है नया।।

[४१]

अंग्रेज भागे देश से छः द्वार टूटे थे तभी।
उसकी भाषा भागते हो भंग सप्तम द्वार भी।।

[४२]

यह देश अभिमन्यु बना अर्जुन कहाँ हो तुम अरे।
द्वार सप्तम भंग तुमसे हो सकेगा धनुर्धरे।।



[redacted]

तू क्यों बैठा हाथ पसारे?

तू क्यों बैठा हाथ पसारे?
तू जन्मा था इसीलिए क्या?
बोझ बनेगा धरती पर,
सोचा था बस क्या?
प्ररिस्थितियों का दास बन गया,
यही नियति क्या?

नियति चक्र के दास बने क्या हाथ तिहारे?
तू क्यों बैठा हाथ पसारे?

अपने हाथों को देख अरे! जो तू फैलाए।
कर्मकाण्ड के इन अस्त्रों को है झुठलाए।।
लंका कांड करो मारो दश-आनन,
तू नर हो कर अरे! निराश करे निज मन।।

कर्महीनता त्याग उठा गाण्डीव गदा रे!
तू क्यों बैठा हाथ पसारे?

[redacted]

इतिहास बनाया है सदियों से इन हाथों ने।
साहित्य रचाया है सदियों से इन हाथों ने।।
धर्म, कला, विज्ञान सभी रचनाएं रचकर,
चमत्कार दिखलाया सदियों से इन हाथों ने।।

विश्वास-धनुष अब उठा कर्म के बाण चढ़ा रे!
ये हाथ याचना हेतु नहीं अब इन्हें उठा रे
तू क्यों बैठा हाथ पसारे?

[redacted]

मानव जीवन

आशाओं के सागर में मानव को अकथ निराशा!
हूँ समझ न पाया मैं तो इस जीवन की परिभाषा।

राहें कितनी कंटक हैं
औ प्रकृति बनी है छलना।
छल छल जाता है पल पल,
तिस पर मानव का चलना।
कैसी है पंगु साधना,
चल चल कर फिर फिर रुकना।
सिर अहम् दम्भ में उठना,
दानव समक्ष पर झुकना।

प्रतिध्वनित दनुज वाणी में मानव की भूषित भाषा!
हूँ समझ न पाया मैं तो इस जीवन की परिभाषा।

मानव ने सीखा घुट-घुट,
तम-तमस-तिमिर में जीना।
जीवन का गरल सुधा सम,
हँस-हँस कर पल-पल पीना।

[redacted]

मन में सुख का है सपना,
पर दुख से छिलता सीना।
सुख-दुख की माया ने ही,
जीवन का समरस छीना।

सागर को पल-पल पीता फिर भी रह जाता प्यासा!
हूँ समझ न पाया मैं तो इस जीवन की परिभाषा।

ध्रुव सत्य सदा से दो हैं–
इस जग में आना जाना।
फिर भी मानव के मन ने,
आने को ही है माना।

संग्रह में रत वह हर पल,
सोचा न कभी है जाना।
मृत्यु समय तक भव का
बुनता है ताना-बाना।

जीवन जी लेता फिर भी बच जाती है अभिलाषा!
हूँ समझ न पाया मैं तो इस जीवन की परिभाषा।

[redacted]

कर्म कर तू, कर्म कर तू.......

कर्म कर तू, कर्म कर तू, कर्म कर तू कर्म कर।
उद्योग कर, उद्योग कर, उद्योग कर, उद्योग कर।।

कर्मयोगी कृष्ण भी त्रय योग गीता में कहें।
धर्म ज्ञान आदि संग कर्म की महिमा कहें।

पर कर्म मुट्ठी में तेरे, धर्म ज्ञान नहीं रहें।
कर्ता तुही है कर्म का भगवान तुझ में ही रहें।

ध्यान धर इस मर्म पर तू ईश के इस मर्म पर।
कर्म कर तू, कर्म कर तू, कर्म कर तू, कर्म कर।।

सुप्त है यदि सिंह कोई, क्या अर्थ फिर सिंहत्व का?
कर्ता ही यदि निष्क्रिय रहें, क्या अर्थ फिर कर्तृत्व का?

है विश्व का सृजन तेरे ज्ञान का विज्ञान का।
तेरा ही अन्तस करे सारा भ्रमण ब्रह्माण्ड का

[redacted]

शीत ग्रस्त जो शक्तियाँ हैं तू इन्हें फिर गर्म कर।
कर्म कर तू, कर्म कर तू, कर्म कर तू, कर्म कर।।

विश्व अणुबम है बना यह फट पड़े कब क्या कहो?
संघर्ष सागर बढ़ रहा है विश्व में शाश्वत अहो।

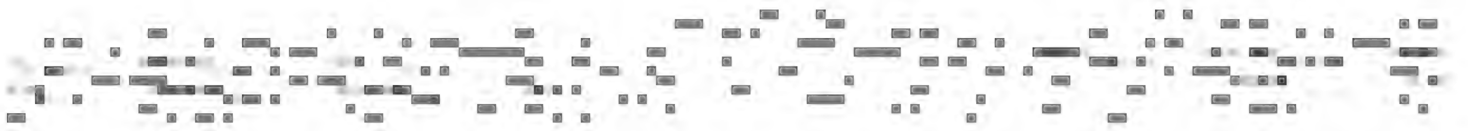
तनाव शैथिल्य आपका फिर ध्येय तब यह क्यों न हो?
तुम महावीर, बुद्ध, नानक और गाँधी पुत्र हो।

बस तन रहे इस विश्व को तू नर्म कर, तू नर्म कर।
कर्म कर तू, कर्म कर तू, कर्म कर तू, कर्म कर।।

धार्यते इति धर्म है– धर्म जो धारण करे।
कल्याण मानव मात्र में ही तू जिए औ तू मरे।

हिन्दू, इसाई, पारसी, मुस्लिम आदिक धर्म जो।
उस धर्म के हैं अंश, है विश्व मानव धर्म जो।

विश्व मानव धर्म से तू विश्व को अब शिवम् कर।
धर्म धर तू, धर्म धर तू, धर्म धर तू, धर्म धर।।
कर्म कर तू, कर्म कर तू, कर्म कर तू, कर्म कर।



[redacted]

रे युवक! तू भीरु निकला

रे युवक! तू भीरु निकला।
अपनी आशाओं को पुष्पित होते न देख,
तू सतत हिंस्र हो चला!
अहिंसक गाँधी के पुत्र,
तू अपने बापू को भूल चला!

रे युवक! तू भीरु निकला।

सत्य माना सत्ता तुझे सम्यक शिक्षा न दे सकी,
तेरे कर्मठ करों को भी कुछ काम वह न दे सकी।

विद्याध्ययन श्रम व्यर्थ हुआ तेरा नौकरी नहीं लगी,
नकल से उत्तीर्ण वे हुए और नौकरी भी लगी।

कारण एक मात्र एक था,
या तो चाचा की कुर्सी थी या पिता धनस्वामी था।
तब सृजन की क्षमताओं से भटक
अरे! तू विध्वंसक हो चला।

रे युवक! तू भीरु निकला।

[redacted]

तू जहाँ भी गया, माना ठगा गया।
आश्वासनों के ढेर में दाबा गया।
देखा तूने कानून तोड़ते कानून के रक्षकों को।
देखा तूने बगुला भगत समाज के भक्षकों को।
देखा तूने उन्हें जिनकी तिजोरियां भरी पेट भरे।
देखा तूने उन्हें जो सड़कों किनारे भूखों मरे।

बुभुक्षो किम न करोति पापं
को पर तू अंगीकार कर चला।

रे युवक! तू भीरु निकला।

पर तूने अहिंसा और निष्काम कर्म को समझा कभी?
बुद्ध, गाँधी और गीता कर्म-ज्ञान को बूझा कभी?

हिंसा से सदा हिंसा जन्म लेती है।
वह सदा शक्ति को ही शक्ति देती है।
और–
तुझ शक्तिहीन को,
देगी हिंसा मात्र लाल रक्त।
और वह भी तेरा ही या कदाचित अपनों का
इसलिए ओ युवक!
भीरुता की त्याग सीप
प्रज्ज्वलित कर अहिंसा का दीप।
तू सुनिश्चित सूर्य बन जाएगा।
और एक दिन विश्व को, हाँ विश्व को
प्रकाशित कर जाएगा।

[redacted]

और तब तिमिर छट जाएगा।
और तभी
गाँधी का पुत्र भी भीरुता भगाएगा,
स्वयं गाँधी बन जाएगा।
तेरी भीरुता जब दूर भाग जाएगी,
अहिंसा की शक्ति नया बिहान लाएगी।

रे युवक! सत्य अहिंसा को स्वीकार
अब भी भला।

[redacted]

हारी भला इंशानियत?

सत्ता की भाषा अंग्रेजी,
और शैली अंग्रेजियत।

ज्ञानस्त्रोत पाश्चात्य,
पौर्वात्य में मिश्रित।

यह तो है इंडिया रे!
यह नहीं भारत।

अभी भी आपकी न्यू डेहली
अभी भी मिले आपको हवेली।

डेहली, मड्रास चाहे रामा,
कलकटा, शिवा, चाहे कृष्णा।

नार्थ से साउथ, ईस्ट से वेस्ट
भारत कहीं है? अरे देख!

परतन्त्रता छूटी अंग्रेजों से पर–
अंग्रेजी और अंग्रेजियत से।

[redacted]

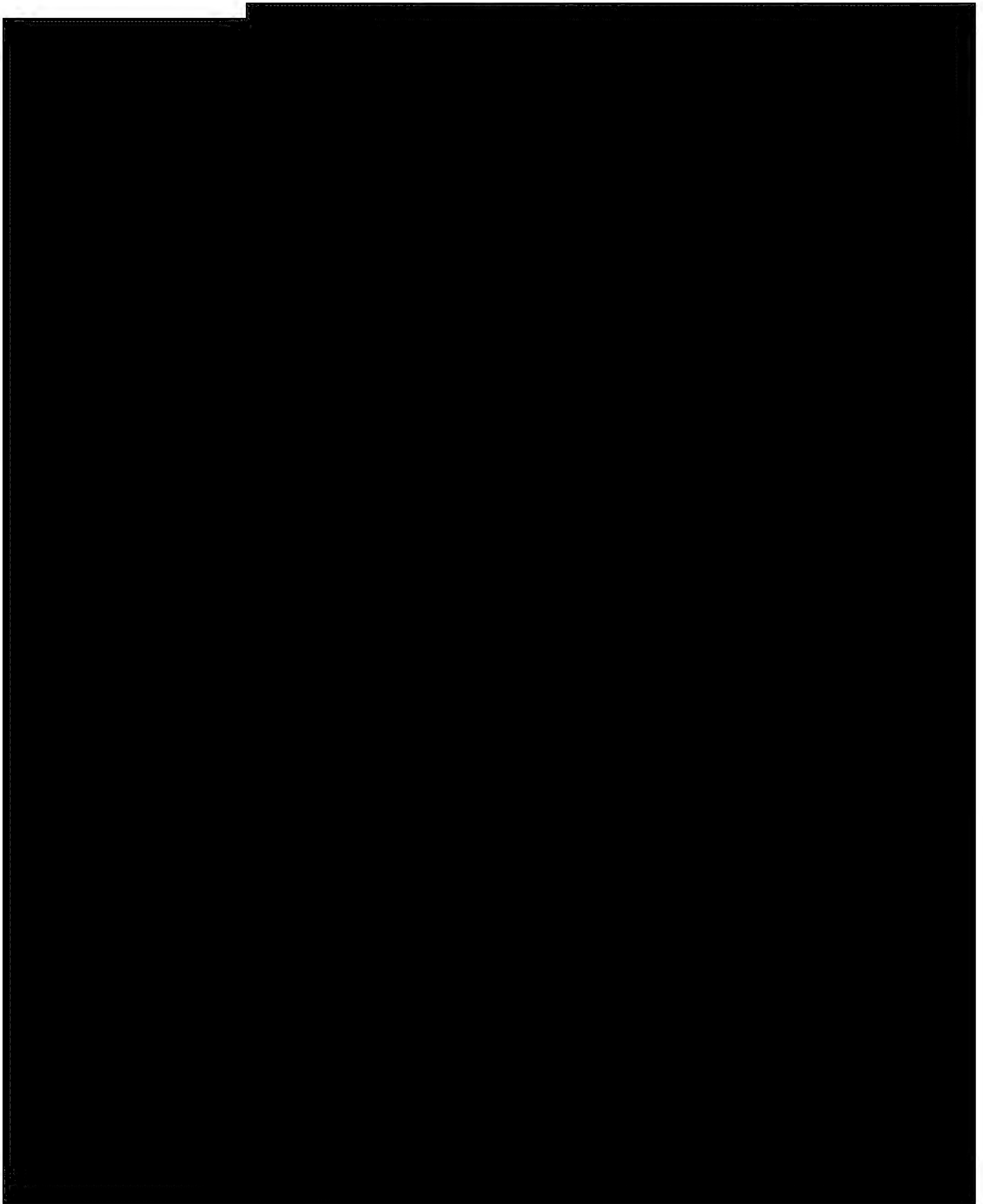
अशोक, अकबर की आत्माओ!
मुक्त हो जाओ इण्डिया से।

कश्मीर से कन्याकुमारी,
अरुणाचल से मरूभूमि थार
है भला कहीं कोई दीवार?—

क्या हिन्दी, हिन्दू?
नहीं।
क्या उर्दू, मुस्लिम?
नहीं।
क्या तमिल, तमिलनाडु?
नहीं।

क्या पंजाबी, पंजाब?
नहीं
क्या कश्मीरी, कश्मीर?
नहीं।
क्या कन्नड़, कर्नाटक?
नहीं।
नहीं! नहीं!! नहीं!!!

स्वतन्त्रता युद्ध दो थे—
प्रथम— यूनियन जैक और तिरंगा का।
द्वितीय— इंडिया और भारत का।
प्रथम जीते परन्तु द्वितीय जारी है।
द्वितीय जीतने की अब बारी है।



लड़े थे लाखों लाल,
बापू, पटेल, जवाहर लाल।
भगत सिंह, आजाद और सुभाष
फलित हुए सम्मिलित प्रयास।

तब एक स्वर्णिम क्षण आया–
यूनियन जैक हारा
तिरंगा लहराया।
वह क्षण, स्वतन्त्रता दिवस कहलाया।

यद्यपि देश प्रथम दृष्ट्या स्वतन्त्र हो गया है।
पर इंडिया और भारत का युद्ध चल रहा है।

नारे स्पष्ट हैं
यद्यपि क्लिष्ट हैं–
''अंग्रेजी हटाओ; फूट, हीनता हटा; आत्म गौरव पाओ'' – भारत ने कहा।
''अंग्रेजी बनाए रखो, एकता बनाए रखो'' – इंडिया ने कहा।

तब भारत ने इंडिया को ललकारा,
आत्मा के अन्दर से फटकारा-
''अंग्रेजी को एकता का आधार कहने वाली!
अखण्ड एकता के लिए यूनियन जैक फहरालो!
पर याद रखो!

दक्षिण में उत्तर में
मुस्लिम में हिन्दू में,
भारत के एक-एक रक्त बिन्दु में

[redacted]

गैरत होगी गर इनमें
जैसी थी इनके पूर्वजों में
तब–
फिर तब–
जब न रहे अंग्रेज
तब न हर पाएगी अंग्रेजियत।
निश्चय ही हमसे ही कहेगी यह गुलामियत–
'इस धरा पर है कभी
हारी भला इंशानियत?'

[redacted]

भंगी (स्वच्छकार)

सर्वाधिक पददलित और शोषित सदियों से,
चले आ रहे पर समाज का बोझ उठाए।
शूद्रों के भी शूद्र! बने तुम महाशूद्र से,
रहे सदा पर तुम समाज में शीश झुकाए।

सिर में मलमूत्र नरों का ढोयाजीवन भर,
जीवन ढोने को विवश बना मलमूत्र मध्य घर।

गिद्ध और गीदड़ प्रकृति के सफाईकर्मी,
वे न उपेक्षित, जैसा तू, हैं तेरे धर्मी।

हर नगर गाँव के गन्दे से गन्दे स्थल को,
स्वच्छ करे, ढोए पशुवत, तू फिर मल को।
गिद्ध और कुत्ते भी क्या तुझसे होते,
कौवे गीदड़ भी क्या तेरे जैसा ढोते?

गिद्ध, श्वान, गीदड़, कौवे क्या कुछ हीन हुए,
पशुपक्षी समाज में बोलो क्या वे दीन हुए?
पक्षी जाति का गिद्ध अमरवीर सेनानी,
दूर दृष्टि धारक वह, गिद्ध-दृष्टि का मानी।

[redacted]

ओ स्वच्छकार। तुम जागो पोंछो आखों का पानी,
कहदो समाज से नहीं तुम्हारा कोई अब है शानी।
हीन भाव को त्याग हिमालय से ऊँचे बन जाओ,
एक-एक करके तुम सब फिर 'बाल्मीकि' बन जाओ।

आराध्य देव जो राम, कभी भी राम नहीं होते,
बाल्मीकि यदि अकथ अथक रह शब्द नहीं देते।
रामनाम की ज्योति जली होती घर-घर कैसे?
सृजक के सृजक बाल्मीकि यदि जन्म नहीं लेते।

[redacted]

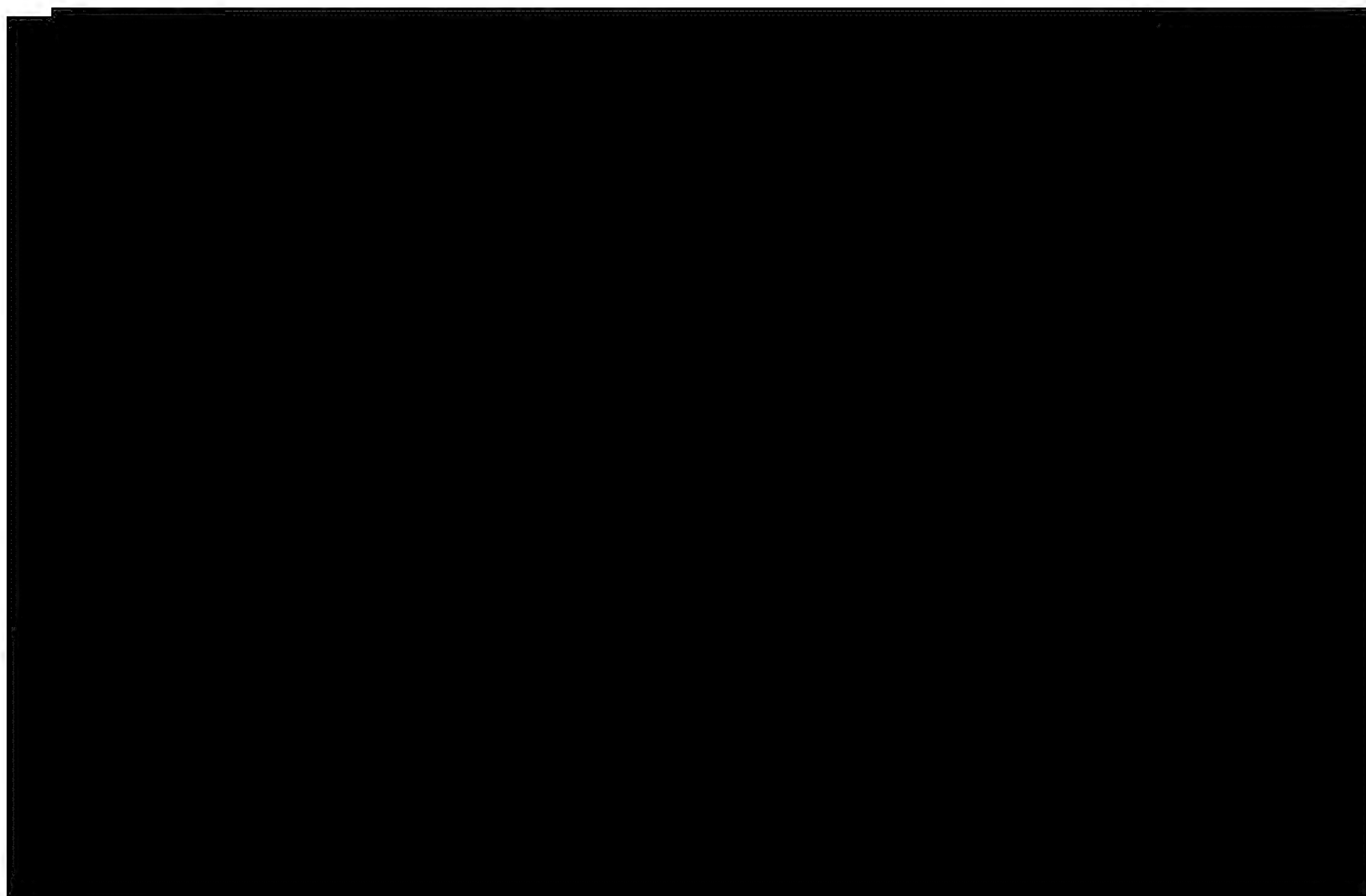
मैं कोढ़ी हूं

मैं कोढ़ी हूँ।
तिल तिल मरने को विवश
मृत्यु की सीढ़ी हूँ।
यह पूर्व जन्म के कर्मों का फल कहते तुम,
यह इसी समाज का फल जिसमें हो रहते तुम।
अगर समाज में कोढ़ नहीं होता,
तो मुझमें बीज कौन फिर बोता?
फिर कैसे इसका पूर्व जन्म से नाता?
कोढ़ी समाज! यह गृन्थि नहीं सुलझाता।

दुनिया की नजरों में मेरी काया कोढ़ी,
तुम देखो मेरी नजरों से सारी दुनिया कोढ़ी।
जब तक पापी दुनिया कोढ़ को कोढ़ कहेगी,
बीमारी से बड़ा दर्द कोढ़ी का दर्द सहेगी।
इस समाज के पापों की मैं ड्योढी हूं,
मैं कोढ़ी हूँ।

[redacted]

तुम मेरी दुर्दशा देख विमुख होते हो।
मुझको समीप में देख धैर्य अरे खोते हो।
चन्द सिक्के फैंक दूर से कर्तव्यों की इति करते,
मैं मरता हूं तिल तिल सोचो तुम भी यदि यूं मरते।
मैं और तुम नर्क स्वर्ग की जोड़ी हूँ।
मैं कोढ़ी हूँ।



यमराज! तुम तो न्याय करो

बचपन मात पिता थे छीने,
भीख माँग चुक आज गया हूँ।
दृष्टिहीन मैं, लाठी ही बस–
एक सहारा, टूट गया हूँ।
बोझ स्वयं पर, भार धरा पर,
मरणासन्न मैं आज हुआ हूँ।

क्यों न मुझे तुम अन्त दे रहे?
किञ्चित् पुनर्विचार करो।
यमराज! तुम तो न्याय करो।

असंख्य दुधमुहे शिशुओं को तुम
मृत्यु का द्वारा दिखा देते हो।
जीवन लालसा लिए बधुओं को
अग्नि समर्पित कर देते हो।
स्वर्गधरा पर रचने वालों को
भी जल्दी हर लेते हो।





[redacted]

मुझ कीड़े को आयु दे रहे
अब तो मत अन्याय करो।
यमराज! तुम तो न्याय करो।







[redacted]

विज्ञानमय धर्म हो, धर्ममय विज्ञान हो

धर्म है क्या वह तुम्हारा
आग से जो दहन जाय?
या कि वर्षा बूंद से वह
काच घट सा फूट जाय।

विज्ञान को देखो कि कितना
विश्व को न्यायमत दिया है?
शक्ति है विज्ञान की क्या,
मनन चिन्तन यह किया है?

आलोचना है शक्ति उसकी
''क्या'' और ''कैसे'' या कि ''क्यों''
हैं ईंट गारे ये बने,
विज्ञान भव बनता है यों।

पर आज वह विज्ञान भी,
है मनुज का दुश्मन बना।
प्रेम का है पुष्प जो,
है कीच में देखो सना।







[redacted]

मनुष ही है जनक देखो
विज्ञान एवं धर्म का।
आलोचना से क्यों नहीं
फिर धर्म पाता जीविका।

धर्म क्यों है डर रहा,
आलोचना से हे प्रभो।
विज्ञान जिससे शक्ति पाता
है फूलता फलता अहो।

आओ सभी ओ मानवो!
रचना करें उस विश्व की।
आलोचना हो शक्ति स्त्रोतस
धर्म की विज्ञान की।

फिर हमारे विश्व में उस
धर्ममय विज्ञान हो।
मानव तुम्हारी विजय हो,
विज्ञानमय फिर धर्म हो।



[redacted]

अपना आदमी

तदर्थवाद के इस युग में
विजित किया है ज्ञानेन्द्रियों को कर्मेन्द्रियों ने
सर्वोच्च ज्ञानेन्द्रियों एवं उत्तम्म मस्तिष्क युक्त–
''बुद्धिजीवी''
पराजित हो गया है सुघड़ हाथ पैरों
जी हुजूर करती सलोनी कर्मेन्द्रियों से युक्त
''अपना आदमी'' से
चिन्तन किया
अब बुद्धिजीवी नहीं रहूंगा।
जीवन की हर दौड़ में–
मैं अपना आदमी से हारता रहा
पिछड़ता रहा
हीन होता रहा
शालीनता को सालता रहा
इसलिए मैं भी
अब





[redacted]

अब तो बस
''अपना आदमी'' ही
बन कर आगे बढ़ूंगा।

[redacted]

गरीब

धीर तुम बढ़ चलो, गरीब तुम बढ़े चलो।
एकीसवीं सदी की ओर वीर तुम बढ़े चलो।।

एकीसवीं सदी है अब, तुमको बुला रही,
तुम्हें पूजने के लिए, थाल है सजा रही।
पूजन की थाल में "अक्षत" "धूप" "दीप" लिए
अपनी ही माँ की भाँति, वह भी मुस्करा रही।

"अक्षत" "धूप" और "दीप" विशिष्टार्थ हैं लिए,
पर तुझे न भान हुआ, बुद्धि भ्रमित तेरी रही।
मन्त्रमुग्ध सा हुआ तू खिचा ही जा रहा,
एकीसवीं सदी है जाल, अपना फैला रही।

तन्दुल सुदामा के, भूल क्या तू गया?
"अक्षत" ही गरीब की, पूंजी सदा रही।
निहितार्थ समझ रे! क्या अभी समझा नहीं?
यही सदियों से तेरी भूख का सहारा रही।

वह "धूप" तो देती सदा, खुशबू अमीरो को,
यह "धूप तन बदन में, तेरे ही तपती रही।
धूप में ही रहते, बड़ा हुआ तेरा बदन,
आँखमिचौली सदा, मध्य चलती रही।



[redacted]

''दीप'' तेरे जीवन का सन्देश है अवश्य ही,
थाल में सजाए हुए आशा तुझे दे रही।
सदियों से दीप यह न बुझ रहा न जल रहा,
टिम टिमाती जिन्दगी, भाग्य में तेरे रही।

पूजन सामग्री के इन प्रतीकार्थों में,
अभिधार्थ समझा तू, व्यंजनार्थ पर नहीं।
बीसवीं सदी तो तुम्हें, कुछ भी न दे सकी,
एकीसवीं सदी भी मात्र सपने दिखा रही।

गत सदियों से तुम, गरीबी में जी रहे,
सपने ही देखना नियति तेरी रही।
गरीब तुम सदा रहे, गरीबी अमर रही,
हाँ तेरी जनसंख्या, अवश्य बढ़ती रही।

भूख प्यास और अपना यह नंगा बदन,
छोड़ न पाओगे यहाँ, साथ में लिए चलो।
धीर तुम बढ़े चलो, गरीब तुम बढ़े चलो।
एकीसवीं सदीं की ओर, वीर तुम बढ़े चलो।।

तेरे जैसा धैर्यवाला, विश्व में कोई नहीं,
सभी चूसते हैं तुझे, तो भी उफ़ करे नहीं।
गरीब की हाय में ही कहते हैं शक्ति पुंज,
धैर्य के समक्ष वह भी, हाय निकले नहीं।

[redacted]

जर्जर काया में तेरी धैर्य है बसा हुआ
धरनी समान तू ही, और दूसरा नहीं।
धरनी कभी-कभी, अधीर हो दरक जाये,
पर एक है तू जो, कभी भी फटता नहीं।

धैर्य का तू देवता, अपने मनमें मगन,
धैर्य को गले लगाए, फकीर तुम बढ़े चलो।
धीर तुम बढ़े चलो, गरीब तुम बढ़े चलो।
एकीसवीं सदी की ओर, वीर तुम बढ़े चलो।।

कम्प्यूटर सदी में तुम, हो प्रवेश कर रहे,
''अलादीन के चिराग'' सदृश्य सब बता रहे।
पर वहाँ का भी सर्वोच्च, आश्चर्य यही रहे,
कम्प्यूटर बना रहे, और तू भी बना रहे।

भूख, प्यास, नग्नगता के आंकड़ों को लील कर,
कम्प्यूटर भूखा रहे, तू भी भूखा रहे।
व्यवसायहीनता से ग्रस्त था तू पहले ही,
सुरसा मुंह की तरह, यह और बढ़ता रहे।

न मिल सकेगा काम तुझे उस दुनिया में,
बन्धु बान्धवों सहित, निष्काम तू बना रहे।
एक होगी दुनियां कम्प्यूटर - - - - की एक तेरी,
आतंकवाद दोनों के मध्य - - - - चलता रहे।

[redacted]

तू होगा सड़कों पर वे होगें महलों में,
सामन्तवाद फिर से, आता सा दिखता रहे।
प्रजातन्त्र, लोकतन्त्र, समानता के नारों से,
आज भी छला गया, औ तब भी छलता रहे।

तुझको मिले काम और उसका उचित दाम तभी
गरीबी तेरे साथ फिर, भविष्य में नहीं रहे।
पर उस सदी में जब कम्प्यूटर का राज हो,
यह-भी सम्भव न दिखे, ''राज'' यही राज कहे।

सुई नोक भूमि, दुर्योधन न देगा तुझे,
सम्पत्ति बटवारे में, भेद होता ही रहे।
महाभारत होगा फिर, उस दुनिया में भी,
भगवान लेंगे जन्म, यह गीता में कृष्ण कहे।

''दधीचि'' की सी हड्डियां धारण किए हुए,
धनुष सी काया लिए, वीर तुम बढ़ चलो।
धीर तुम बढ़े चलो, गरीब तुम बढ़े चलो।
एकीसवीं सदी की ओर, वीर तुम बढ़े चलो।।

वीर तुम महान हो, भूख प्यास हैं डरें,
बीमारी, बेकारी, हारती तुमसे फिरे।
जीवन संग्राम में, तेरी कृश काया में,
असंख्य घाव हैं हुए, मृत्यु फिर भी डरे।

[redacted]

गरीबी के तीरों से जर्जर तेरा शरीर,
पर युद्धभूमि में वह अभी तक नहीं गिरे।
गरीब-वीर गन्दगी में, रहने को टाटघर,
गन्दगी की क्या विसात! जो यह घर उसे करे।

जदपि गन्दगी से दूर, रहते अमीर जन,
तथापि यही गन्दगी ही घर उनको करे।
पर ओ गरीब! कमल सा है तेरा मन,
पंक में रहकर भी पंकज सा खिला करे।

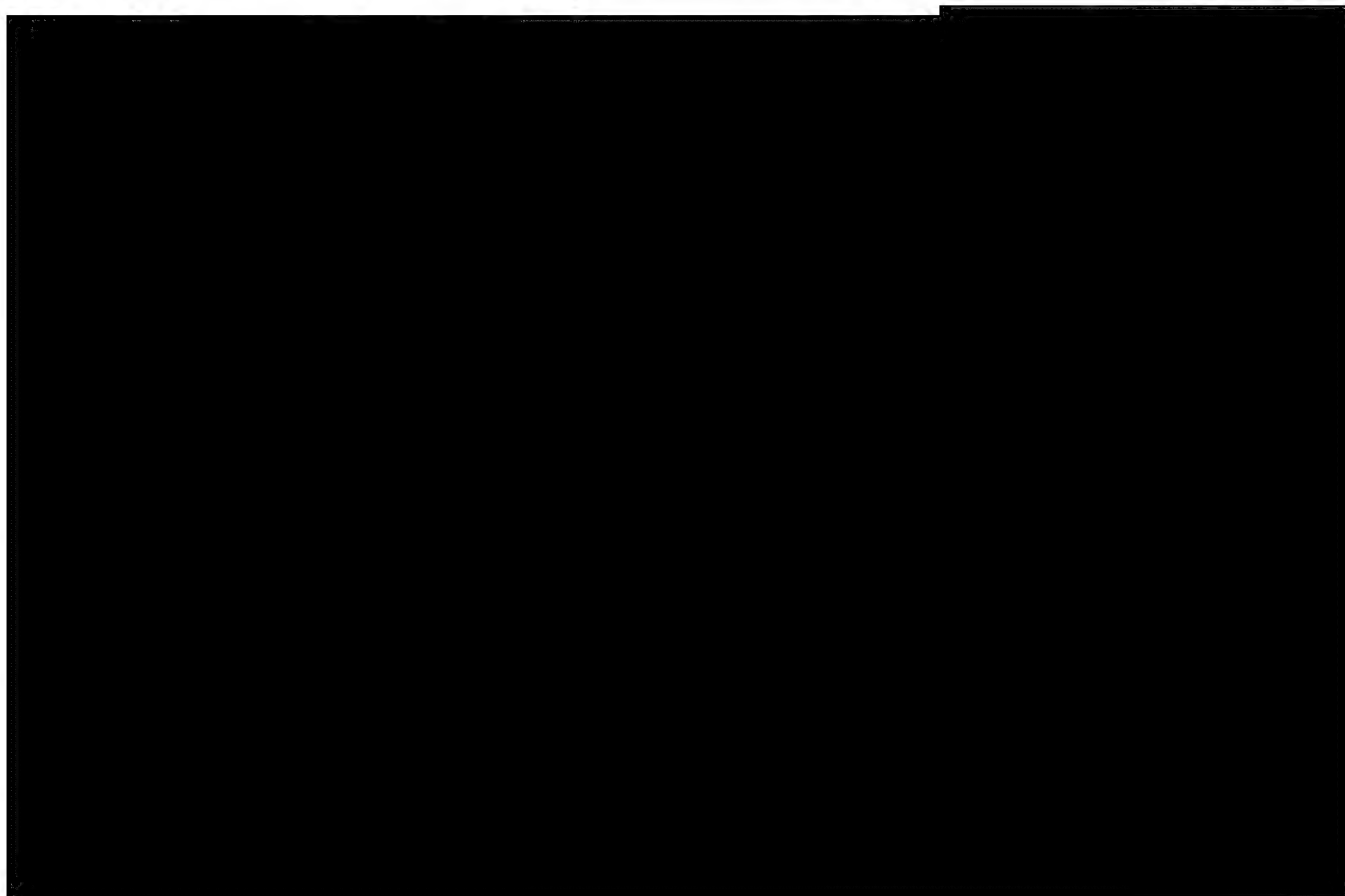
भूख और अभावों से, आहत तेरा तन,
नोचने को गिद्धों व कौओं की फौज फिरे।
राणा प्रताप और राणा सांगा सदृश्य वीर,
दृश्य ऐसा दिख रहा, साहस ही काया धरे।

पर तू प्रताप, सांगा से भी महान वीर,
रोज-रोज तू लड़े, वे कभी-कभी लड़े।
घास की रोटियाँ, भखीं प्रताप ने कभी,
पर तू तो प्रतिदिन, उनसे ही पेट भरे।

सायं से प्रातः तक, प्रातः से सायं तक,
जन्म से मृत्यु तक, जीवन पर्यन्त तक।
पल-पल के युद्ध में, गरमी बरसात लड़े,
जाड़े की ठिठुरन में, दिन और रात लड़े।

[redacted]

संघर्षशीलता, ही, तेरा अमोघ अस्त्र
सदियों से तेरा, वह बना ब्रह्म अस्त्र।
काम सदा आएगा धारण किए चलो।
धीर तुम बढ़े चलो, गरीब तुम बढ़े चलो।
एकीसवीं सदी की ओर, वीर तुम बढ़े चलो।।



सन्ध्या

जब दिन सरका दिनकर खिसका,
रवि रक्त सदृश हो गया जभी।
सन्ध्या ने धीरे-धीरे ही,
पग धरती में धर दिए तभी।।

खगकलरव अरु गुंजार भ्रमर,
चिड़ियों की चह-चह चटर-चटर।
पशु लौट रहे चारा चर कर,
खुर उनके बजते खटर-पटर।

सन्ध्या आगमन है समयबद्ध,
कोई इससे आना सीखे।
आगमन गमन में इसके लय,
इस लय में खो जाना सीखे।।



[redacted]

रूप दिवस निस्तेज हुआ,
जब सन्ध्या रूप निखर आया।
लालिमा कपोलों की इसने,
मानो दशदिशि में बिखराया।।

[redacted]

दीपमालिका

दीपमालिका का इक दीपक बने आपका कर्मोद्दीपक।
तमस शक्ति का यह हो कीलक, आप बनें यश. विश्व कनीनक।।

दीपावलि की दीप अवलियाँ झिलमिल झिलमिल झलक रही।
मानों लक्ष्मी के आंचल की मोती लड़ियां दमक रहीं।।
दीपों की माला ज्योतिमयी ये सुखदा बन कर के आयीं।
तम जीवन का विच्छिन्न हुआ प्रात सुखों का ये लाईं।।
दीप शिखा सन्देश दे रहीं दिव्य ज्योति तुम बन जाओ।
जलकर भी तम का हरण करो भटकों को पथ दिखलाओ।।





[redacted]

कामनाएं जन्म लेतीं

कामनाएं जन्म लेतीं
सतत तेरी कामना से।
कामिनी ऐसी हमारी,
काम क्या है वासना से?

सौन्दर्य तन का तुम्हारा
युग्म होता साजना से।
आन्तरिक सौन्दर्य पीता,
मैं कुमारी भावना से।

आराधना मेरी हो तुम,
मत रोकना उपासना से।
प्रात सन्ध्या दिवस रजनी,
हैं कामिनी की कामना से।

विरत कर सकता नहीं,
कोई हमारी साधना से।
कामनाएं जन्म लेतीं।
सतत तेरी कामना से।





[redacted]

हम तुम्हारी याद में

हम तुम्हारी याद में,
मर-मर के जीते हैं सनम।
सांस गिन कर दिवस बीतें,
रैन पलकों तेरी कसम।

रात्रि की यह कालिमा,
तेरी अलकों सी लगे।
सूर्योदय लालिमा,
देह आभा सी लगे।

मध्यान्ह की भीषण तपन,
तपन तेरे प्यार सी।
सांझ की यह शांत ठहरन,
बाहें पड़ीं गलहार सी।

दिल पुकारे पास आ आ,
आ रही क्यों तू नहीं?
हर सांस में तू उरवशी,
फिर दूर क्यों जाती कहीं?



[redacted]

तुझसे बिछुड़े युग हुए,
कुछ दिवस बस मत समझ।
यदि न आई तू अभी,
जाएगा फिर दीप बुझ।

फिर कब हमारी सांस से
सांस वह टकराएगी।
आश में जिसके टिकी,
यह जिन्दगी बच जाएगी।

[redacted]

री! नारी!!

री! नारी!!
तू क्यों हारी?

तू गंगा जैसी विदुषी थी,
कितनी वैज्ञानिक महिषी थी।
सुत सात दिए गंगा को,
तभी भीष्म की मात बनी थी।

गंगा जो गंगा समान
क्या वे गंगाएं,
आज नहीं री!
री! नारी!!
तू क्यों हारी!

तू ही तो कुन्ती बन आयी,
कर्ण को जन्म दिया बिन व्याही।
भीम युधिष्ठर की माँ तू ही,
अर्जुन की मैया थी तू ही।

नारी जो कुन्ती समान
क्या ऐसी कुन्ती,–



[redacted]

आज नहीं री?
री! नारी!!
तू क्यों हारी?

देवकी बन कर जब तू आयी,
तूने दीन्हा कृष्ण कन्हाई।
देवकी के आँसू ही तो थे,
कृष्ण ब्रह्म· की भांति बने थे।

नारी जो देवकी समान
क्या ऐसी देवी
आज नहीं री?
री! नारी!!
तू क्यों हारी?

तू ही थी सीता कहलाई,
राम की सदा रही परछाई।
सिंया अगर तू साथ न देती,
राम नाम की कथा न होती।

सिया राम की थीं महान
क्या ऐसी सीता
आज नहीं री?
री! नारी!!
तू क्यों हारी?

[redacted]

''इन्दिरा'', ''भण्डार नायके'' तू है,
''थैचर'' ''गोल्डामायर'' तू है।
''एक्वीनो'' की क्या नज़ीर है,
अब भी तू तो ''बेनज़ीर'' है।

''पाल'' चढ़ी एवरेस्ट महान
क्या ऐसी नारी
और नहीं री?
री! नारी!!
तू क्यों हारी?



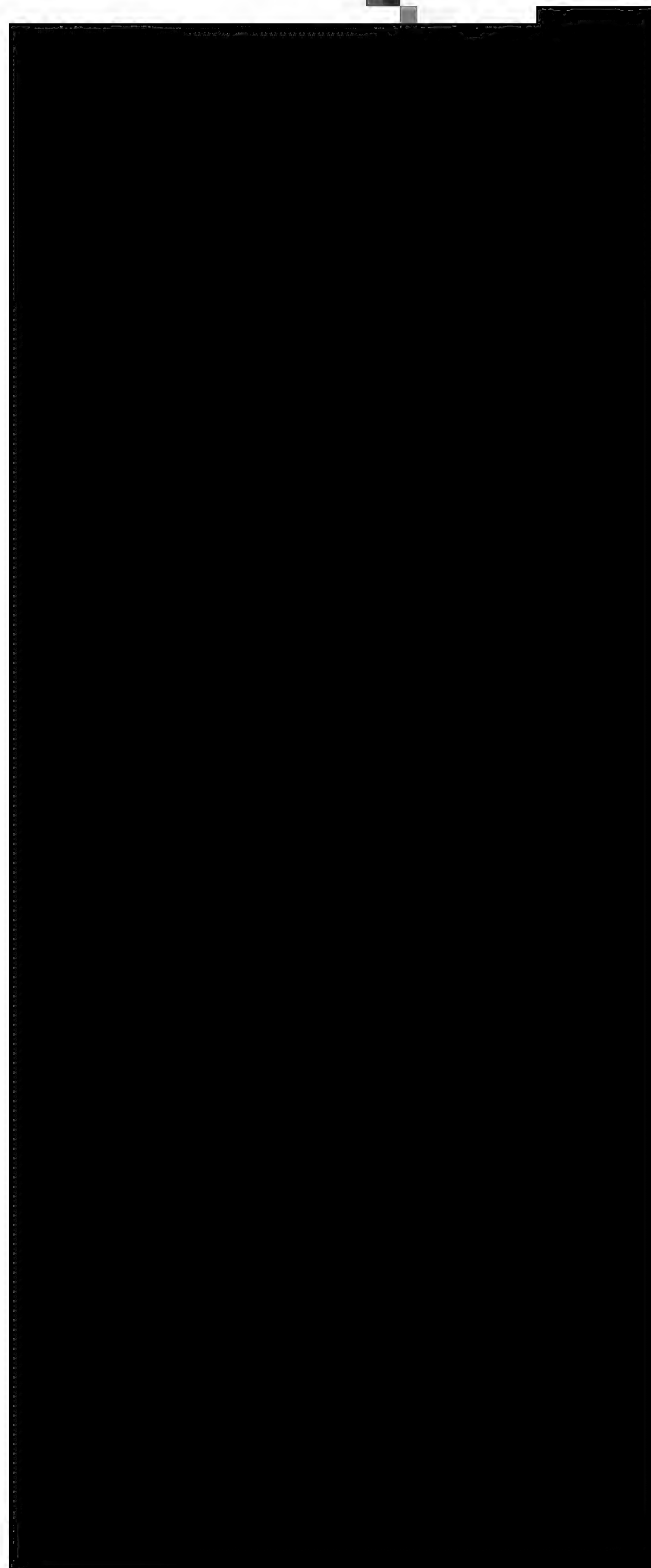
[redacted]

खबरदार!

दहेज का यह दानव इससे जलते परिवार।
खबरदार! खबरदार! खबरदार! खबरदार!

बधुए हैं जल रहीं पर कानून है लाचार।
दहेज कुप्रथा से परेशान है सरकार।
जलती हुई बधू का सुनो अरे चीत्कार।
धन के लिए तुम रह रहे हो आत्मा को मार।
समाज के पहरुओ सुनो, यह आवाज हर बार
खबरदार! खबरदार! खबरदार! खबरदार!

युवको तुम्हारे कन्धों पर देश का है भार।
उठो बढ़ो समाज की सुनो है क्या पुकार।
नारियाँ रचती हैं देखो स्वर्ग-संसार।
बिना दहेज के करो अब तुम बधू स्वीकार।
बधोगे यदि बधू को तुम्हें देश का धिक्कार
खबरदार! खबरदार! खबरदार! खबरदार!



[redacted]

राधा के हाथ

जैसे ही राधा के हाथ पीले हो गए।
जन्मदाताओं से नेह ढीले हो गए।।

राधा की, घर से विदाई के पल
पाषाणों के भी नयन गीले हो गए।

वह रोई थी लिपट लिपट अपनों से,
शहनाई स्वर भी दर्दीले हो गए।

राधा के चरण पड़ते ही देहरी पर,
श्वसुरालय के स्वर सुरीले हो गए।

जिन संग जीवन डोर बाँधी थी उसने,
सजन के सपने भी सजीले हो गए।

फिर कुछ दिनों बाद दहेज दानव वश
सबके सब स्वजन आह हठीले हो गए।

हँसते थे दाँत मोती से जो ससुर घर,
वे ही राधा के लिए नुकीले हो गए।

दहेज दानव से दंशित हो हो कर,
राधा के तो हर पल कँटीले हो गए।

[redacted]

ग़ज़ल

प्रकृति और पुरूष में गुनगुन व झनकार ग़ज़ल होती है।
प्रेमी युगल दिलों में रुनझुन मनुहार ग़ज़ल होती है।

तरुण तरुणी श्रृंगार भरे रस-कलशों की जो छलकन,
आसक्ति- सिक्त औ काम युक्त व्यापार ग़ज़ल होती है।

चितवन, सिहरन, छुअन, मिलन, बिछुड़न औ फिर पुनर्मिलन,
दो तन मन की शाश्वत तड़पन व गलहार ग़ज़ल होती है।

प्रेमी-भाषा में कहूँ कि यह तोता मैना की चोंच लड़न,
लैला मजनू और सीरी, फरहाद ग़ज़ल होती है।

पर ग़ज़ल कहूँ किस भाँति बता ऐ मुझे राष्ट्र के जनगणमन
आधी जनता दुख दर्द भूख थक हार ग़ज़ल होती है

बन्द करो श्रृंगार देश में कर्मवीर व्रत कर धारन
अस्सी करोड़ की जनसंख्या श्रृंगार ग़ज़ल होती है।

[redacted]

ओ अन्त समय तेरा वन्दन!

है अन्त हो रहा स्पन्दन, ओ अन्त समय तेरा वन्दन!
जीवन की तू है परम सत्य, ओ मृत्यु तुम्हारा अभिनन्दन!

जब बीज प्रस्फुटित होता
तब वृक्ष स्फुटित होता।
जीवन तरू जब मिट जाता,
तब पुनः बीज हो जाता।

बीज बीज के पुनर्जन्म में छिपा हुआ तेरा नर्तन।
जीवन की तू............

दीपक यदि जला बुझेगा,
सूरज यदि उठा ढलेगा।
जीवन यदि चला रुकेगा,
कोई यदि उठा गिरेगा।।
प्राकृतिक नियम में सूत्र एक उत्थान जहाँ है वहाँ पतन।
जीवन की तू ....





[redacted]

क्यों य़हाँ पतंगा जलता,
क्यों इक दूजे हित गलता।
क्यों जल फिर जलधि से मिलता
क्यों दिवा रात्रि से मिलता।।
जीवन बन्धन बँधकर तेरे है करता तेरा आलिंगन।
जीवन की तू...............

[redacted]

दुल्हनियाँ

पिया की पियारी, प्यारी, प्यारी री दुल्हनियाँ।
डोली चढ़ी, चल पड़ी, छाँड़ी सारी गुइयाँ।।

बीतो समय खेलन में, बाबुल केरो अंगना,
सखियन संग, भइयन संग, संग खेली बहना।

खेलन केरी बीती उमरि, आय गयो सजना,
बाबुल, भइया, सखियाँ रोएं, रोएं प्यारी बहना।

साजन का बुलावा आते, चली री सजनियाँ
पिया की पियारी, प्यारी, प्यारी री दुल्हनियाँ

पिया घर जाने को, पुराने वस्त्र छोड़ दिए,
बाबुल के री दुनिया के बन्धन सारे तोड़ दिए।

नाते यहाँ तोड़े सारे, सजना से जोड़ लिए,
रोता छोड़ा सब ही को, मुखड़ा को मोड़ लिए।

नथ गयी सजना से, जैसी री नथनियाँ।
पिया की पियारी, प्यारी, प्यारी री दुल्हनियाँ।।

[redacted]

''नाता जनम जनम का है, जनम एक का नहीं,
बार-बार क्यों बिसारी, सुधि ली पिया की नहीं?''

''माया के ही झूले में मैं झूल बार-बार रही।''
सजनी ने सजना से सारी सार में कही।

''माया के रे झूले में, झुलाओ नहीं सइयाँ,.
पिया की पियारी, प्यारी प्यारी री दुल्हनियाँ।

''माया सौतन बन के नचाय रही मुझको,
सौतन संग छोड़ो अब तो'' – कहे री ललनियां।

''प्रियतम मैं सुकुमारी प्यारी तेरी ही हिरनियां,''
ब्रह्म सजना से मिली, आत्मा सजनियां।
पिया की पियारी प्यारी प्यारी री दुल्हनियां।।

'फिरे सात तेरे साथ, मैने इक बार लिया,
बार-बार तूने पिया! मुझको विसार दिया।

चन्दा मेरा तू है, मैं तेरी री चंदनियां,
डाले रहो अपने गले, जैसी री ढोलनियां।,''.

''राज'' कहे सुनो साधो, राज की यह बात एक,
आत्मा, परमात्मा में भेद कछू नहियां।
पिया की पियारी प्यारी प्यारी री दुल्हनियाँ।।

[redacted]

माया सौतन

माया सौतन बहुतै नाच नचायो।
या सौतन दुख की जननी, दुःख सागर में डुबायो।
कबहुंक भीतर कबहुंक बाहर, क्षण क्षण स्वांग रचायो।
काहू को पति, काहुक बेटा, कहि कहि मोह बढ़ायो।
सुख दुख वस्त्र उतार धरे जब, काम क्रोध बिसरायो।
लोभ मोह फिर छांड़ि दीन्ह फिर उन संग नेह लगायो।
या सौतन तब मोसे जलिगै, अहम् भाव मो जगायो।
साजी सिजिया पिया मिलन की, तासे मोहि भगायो।
इन्द्री सिथिल मनवा व्याकुल, अन्धकार है छायो।
''राज'' कहै मैं हार थकी हूं, सौतन मोहि भरमायो।
या सौतन है तेरी माया, अब ल्यौ पिया हटायो।

माया सौतन.....



[redacted]

माया दीमक

माया दीमक या तन खायो।
या तन घर है, परब्रह्म का, माया जाल छिपायो।
दीमक बांबी सा तन बन कर, छिद्र छिद्र हुइ जायो।
दीमक द्वार है दसो इन्द्रियां, इत जाए उत आयो।
चक्कर करती चक्र-चक्र में, जाय कमल दल खायो।
क्षिति जल पावक गगन समीरा, इनहिं घरौंदा जायो।
आत्म ज्ञान की एक दवा से, दीमक जात मिटायो।

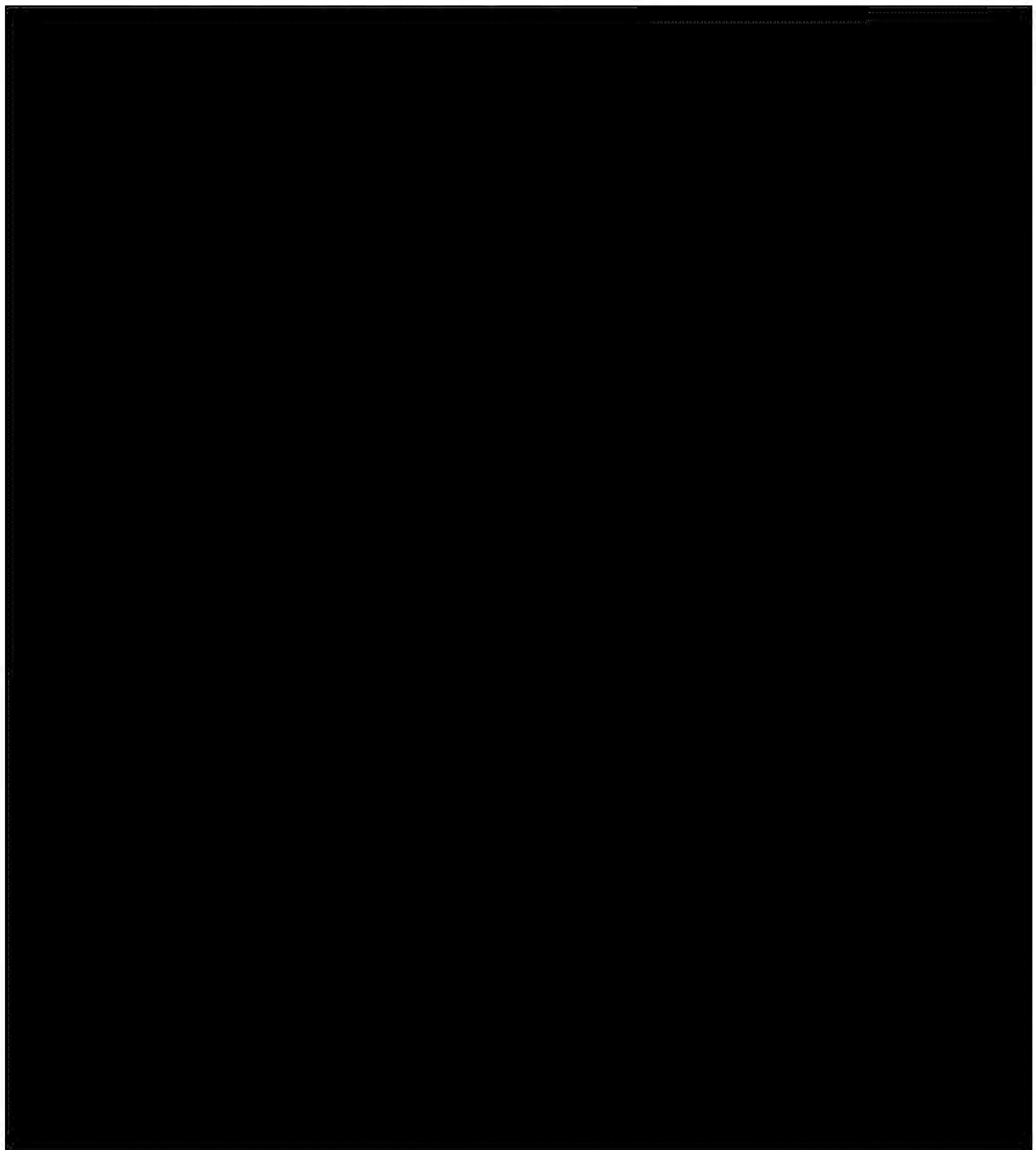




[redacted]

माया छोरी

माया छोरी मोकूं बहुत सतायो।
आंख मिचौनी मों संग खेलै, छुपत फिर देत दिखायो।
याकूं खेल समझ ना आवै, कबहुं दुरै कबहुं आयो।
कबहुंक हँसि हँसि अंग लगावै, कबहुंक रुठि जायो।
सैनन सो बातैं कर कबहूं, दैन कहै नटि जायो।
मीठी मीठी वाकी बतियां, मोकूं बहु भरमायो।
''राज'' कहै प्रभु माया छोरी, मोकूं बहुत नचायो।
या छोरी संग तुम ही खेलौ अपनेहिं पास बुलायो।



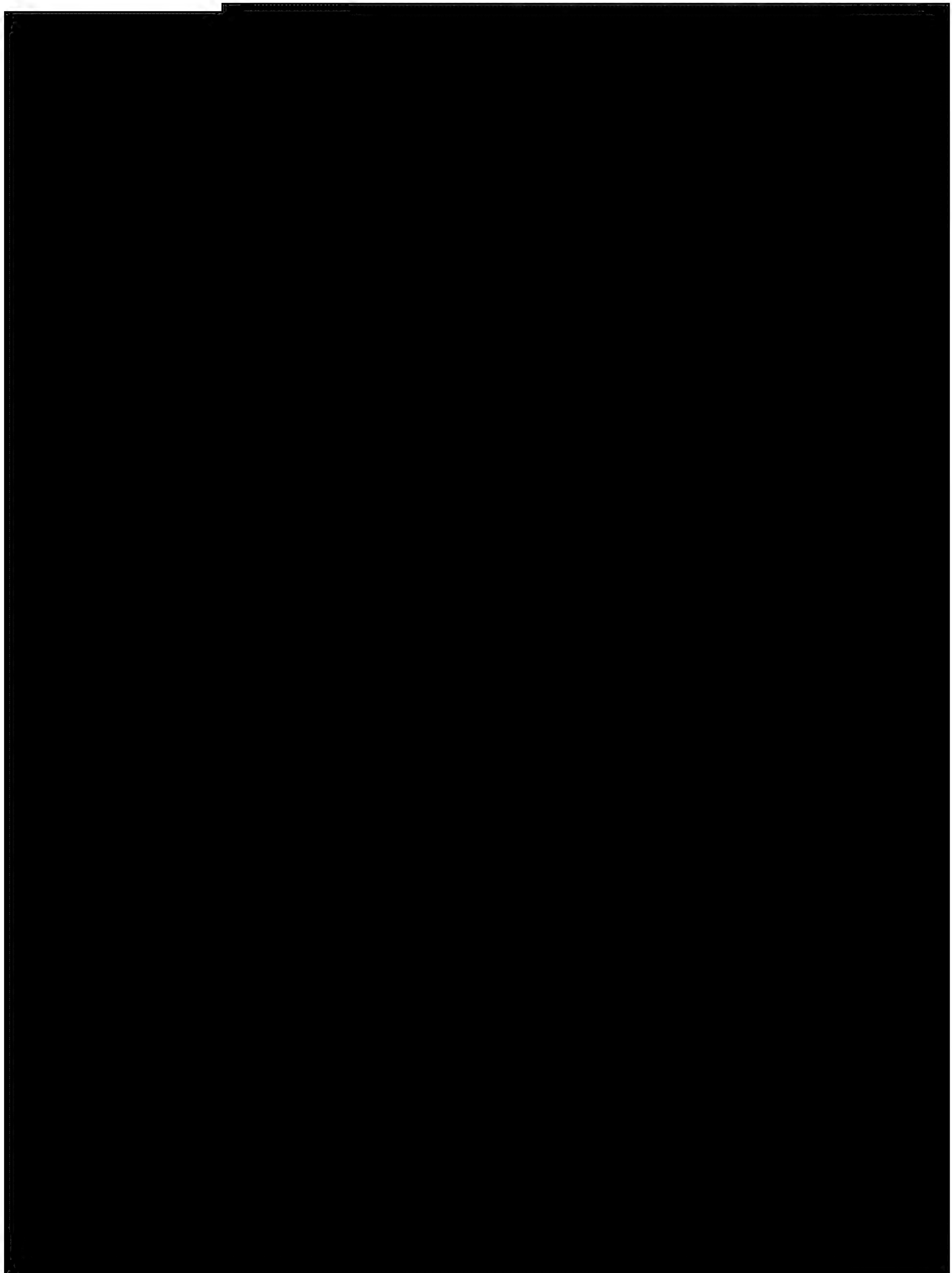
माया का संसार

माया का द्याखौ संसार
घर में माया, बाहर माया, मिले न इसका पारावार।
जनम में माया, मरन में माया, माया के लागें दरबार।
सुख में माया, दुख में माया, मानुष जाएं इससे हार।
चर में माया, अचर में माया, इसके ही हैं सब घर द्वार।
माया का ही खेल है द्याखौ, माया मय सारा संसार।
राम भजन बिन मुक्ति न मिलिहै, चाहे जन्मों बारम्बार।
''राज'' कहै प्रभु माया ले लो, कर दो अब मोकूं भवपार।

[redacted]

माया चिड़िया

माया चिड़िया मैं जानी।
माया चिड़िया उड़ि उड़ि बैठे, फिर फिर बोलै बानी।
जाके घर वो उड़ि पहुंचे, सुख धन-धान्य भी आनी।
जाके घर सों वा उड़ि जावै, छाड़ैं न कौड़ी कानी।
जीवन भर फिर रटतै बीत्यो, पिउ-पिउ पपिहा बानी।
ना जानै किसके ह्वै बैठे, कू-कू कोयल रानी।
''राज'' कहै प्रभु इस चिड़िया कूं, को दे दाना पानी।
चिड़िया जीवन-खेत चुगत है, दूर भगा रे प्रानी।



बादल

काले नीले भूरे बादल।
घसियाले मटियारे बादल।
भादौं भए भयानक बादल।
बच्चों! तुम्हें डराते बादल।

पत्थर सदृश बने यै बादल।
अन्दर से पर कोमल बादल।
बाहर से ये काले बादल।
अन्दर पर उजियाले बादल।

विश्व भ्रमण पर निकले बादल।
विश्व एक है 'कहते बादल।
ह्वेन सांग, कोलम्बस बादल।
''कर देशाटन''– कहते बादल।

''सुन सुन ओ प्रिय बालक दल।
ऊंचा उठ जितना हम बादल।''
दुनियां दिखती सुंदर पल पल।
विजयी विश्व बनों ज्यों बादल।

[redacted]

सूरज तपता जब धरती तल।
उसको जा ढकते ये बादल
छांह दिलाते फिर ये बादल
तीनो ताप हरें ये बादल

प्यासी धरती देखे बादल।
प्यासा मानुष, पशु पक्षी दल।
सागर जल को लेकर बादल।
धरती को दे जाते बादल।

पृथ्वी प्यास बुझाएं बादल।
खुद प्यासे रह जाएं बादल।
पर उपकार गलें ये बादल।
पर उपकार मिटें ये बादल।

तुम भी बढ़ो बढ़ें ज्यों बादल।
विद्युत शक्ति रखो ज्यों बादल।
पर उपकार करो ज्यों बादल।
विश्व समृद्ध करो ज्यों बादल।



[redacted]

राम जन्म भूमि

राम जन्म भूमि को तो राम ही सँभालेंगे,
आप दिनरात बस कुर्सी को सँभालिए।
राम राष्ट्रभमि औ समाज को तो जोड़ेंगे ही,
है आपको चुनौती आप राष्ट्र काट डालिए।।
आपको जरूरत क्या है राम नाम सत्य की।
कुटिल कुर्सीवाद से ही सत्ता को संभालिए।
कश्मीर में तो राम नाम लेवा हैं बचाए नहीं,
बस चले तो राष्ट्र से भी राम को निकालिए।





[redacted]

महाकाली

खप्पर वाली महाकाली शक्तिदायिनी ओ काली माँ,
देख भारत भूमि की फिर फट रही छाती है।
असुर संहारिणी, मुण्डमालिनी ओ काली मां,
भारत भूमि फिर तुझे टेरती बुलाती है।।

वृत्रासुर पिशाच से जब हारते हैं देव सभी,
महाकाल रक्तबीज तू ही तो संहारती है।
असुरों के सिर काट धारती है मुण्डमाल,
दानवों का रक्त पीकर धरती सँवारती है।।

आज फिर वृत्रासुर आन बैठा सीमा पर,
कितने ही असुरों को जन्म देता जा रहा।
जितने ही असुरों के सिर हैं उड़ाए जाते,
आतंकवादी रक्तबीज बढ़ता ही जा रहा।।

पंजाब को हैं जलते अनेकों वर्षों हो गए,
कुछ वर्षों से है कश्मीर जला जा रहा।
आसाम भी है जलता आतंकवादी असुरों से,
मातृभूमि का है अंग-अंग जला जा रहा।।

[redacted]

मनुष्यो! औ मनुष्यो मध्य वैठे हुए देवताओ!
वृत्रासुर संहार हेतु काली को बुलाइए।
आंतकवादी असुरों औ वृत्रासुर पाक को,
मिटाने हेतु सुप्त काली शक्ति को जगाइए।।

जागो जागो जागो जागो जागो जागो काली माँ,
टेरते हैं लाल तेरे अब तो जाग जाइए।
वृत्रासुर संहार कर असुरों को मारकर,
भारतभूमि को दानव-मुक्त कर जाइए।।

[redacted]

धर्म निरपेक्षता

धर्म निरपेक्षता सिद्धान्त इस देश का,
इसको निभाने का प्रयत्न होना चाहिए।
सर्वधर्म समभाव भाव पलता रहे,
संविधान को संवारने का यत्न होना चाहिए।।

धर्म हैं सभी समान एक ही है भगवान,
मानव मानव मन में यह बीज बोना चाहिए।
उसे पूजने के लिए रास्ते अनेक पर,
मानव सदा एक यह तमीज होना चाहिए।।

सम्प्रदाय की लड़ाइयां रे बन्द करो देश में,
श्रेष्ठ निज धर्म कहना अन्त होना चाहिए।
शैतान के समान सोच और सपनों का अब,
अन्त कर, सब को ही सन्त होना चाहिए।।

राम राम कहें आप सलाम वालेकुम वे,
अल्लाह राम का इक स्थान होना चाहिए।
राम राम औ सलाम बोले नहीं साथ साथ,
उनकी न देश में दुकान होना चाहिए।।



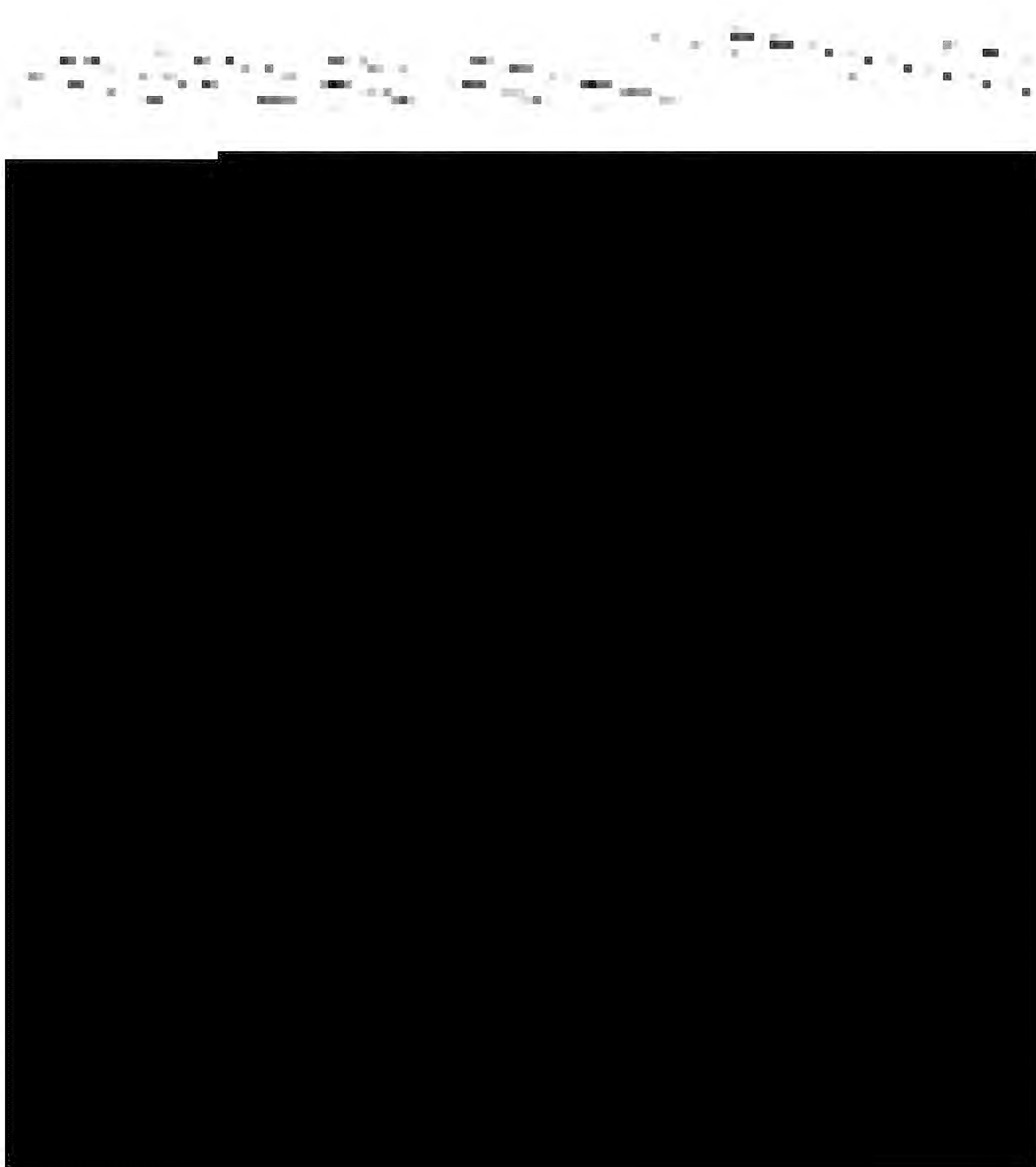


[redacted]

हिन्दू घर कष्ट में, मुसलमान जाएं और,
मुसलमान घर में हिन्दू को जाना चाहिए।
धर्म निरपेक्षता और मातृभूमि के लिए,
व एक दूसरे के हित प्राण जाना चाहिए।।

पर पाक है पड़ोसी देश पाक नहीं ताहि भेष,
विद्वेष उसका नहीं स्वदेश आना चाहिए।
खुद टूट गया तो हमें भी तोड़ता है दुष्ट,
प्रेता छाया उसकी हमें भगाना चाहिये।।

धर्म निरपेक्षता अक्षुण्ण रखना है यदि,
सर्वे भवन्तु सुखिनः का भाव लाना चाहिए।
कश्मीर में भी हिन्दुओं को प्यार व सुरक्षा हेतु,
मुसलमान भाइयों को आगे आना चाहिए।।



दोहे

[१]

कर्म जीव कर्म ईश्वर, कर्म विश्व आधार।
कर्म से ही मोक्ष है, कर्म सूत्र ही द्वार।।

[२]

कटुता मत पैदा करे, हठता जड़ता छोड़।
इनके छोड़े ही लहे, जीवन का हर मोड़।।

[३]

जीवन के संग्राम में, मन को राखो थाम।
मन के थाम सब थमै, मिले जीव को धाम।।

[४]

''राज'' कहे इक राज यह घर घर में है राज।
घर तक भी नाराज हो, तृष्णा जले समाज।।

[५]

धन संग्रह तू कर रहा, फिर भी धनी न होय।
राम नाम संग्रह करे, तुझ सा धनी न कोय।।

[६]

भूलें वे नित नित करत, फिर भी पाते छूट।
मैंने एकहि भूल की, जीवन घट गयो फूट।।

[७]

हरि जन जन में हैं बसत, तू मंदिर क्यों जाय
हरि जनमे है तन तेरे, बाहर तू क्यों धाय।।





[redacted]

[८]

अधिकारी अधिकार मद, क्यों इतना इतराय।
मरघट तू भी जाएगा, मद दे तू बिसराय।।

[९]

यहि शरीर के कारणे, खुद को जाता भूल।
खुद को गर ऊंचा करे, खुदा बसें हिय मूल।।

[१०]

राम खुदा के मध्य तू, खड़ी करे दीवार।
हृदय मध्य तू झांक गर, एक राज दरबार।।

[११]

जल में घर है मीन का, प्यास न तबहुं बुझात।
प्यासी ही फिरि फिरि फिरै, जीवन ही जल जात।।

[१२]

जन्म भूमि भगवान की, नहिं अल्ला को धाम।
बाहर कुछ भी नहिं अरे, अन्दर वाको ठाम।।

[१३]

धर्म हेतु फिर फिर लड़ैं, धर्म न धारै कोय।
एक धर्म है मनुज का, दूजो धर्म न होय।।

[१४]

जन्म हुआ तो मृत्यु सत् मृत्यु अवस तब जन्म।
जन्म मृत्यु के फांस में, फंसा रहे मतिमन्ह।।

[१५]

महान आत्मा तो स्वयं, हरते पर संताप।
जिमि शशि हरती धरा का, सूरज का जो ताप।।

[१६]

रोए नहीं विषाद में, हर्ष नहीं हर्षाय।
सुप्त सदृश सदा रहे, शान्त पुरुष कहलाय।।



[redacted]

[१७]

अन्तः शीतल ह्वै गया, बुद्धि मोह से दूर।
विषयों में आसक्ति नहिं, शान्त कहावै शूर।।

[१८]

युद्ध, मरण, उत्सव, दुखों, व्याकुल जो नहि होय,
शशि मण्डल आभा सदृश, रहे शान्त जो होय।।

[१९]

सुनत, देखत या चखत, प्रिय अप्रिय नहि भेद।
एक समान सदा रहे, शान्त बतावैं वेद।।

[२०]

जीव ब्रह्म ढूंढत फिरत, मिलत एक ह्वै जात।
ज्यों जल ढूढ़ै जलधि को, नहि जल जलधि दिखात।।

[२१]

हर नर में हरि बसत हैं, ब्राह्मण या कि अछूत।
दोनों को ही पूजिए, दोनों हरि के पूत।।

[२२]

चिन्ता चित की चाम को, चाउर चाउर खाय।
चिता भखत है मृतक को, चिन्ता जीवित खाय।।

[२३]

करना ऐसे कर्म को, जो नहिं रुचे समाज।
करना ऐसे कर्म का, बहुरि बिगारै काज।।

[२४]

अन्धे हाथी को लखैं, वर्णन करैं अनेक।
धर्म कहैं अपनी तरह, पर वह तो है एक।।

[२५]

सुन्दरतम मैं कस कहूं, सुन्दरतम से श्रेष्ठ।
सुन्दरता की मूर्ति तुम यह भी नहीं यथेष्ठ।।

[redacted]

[२६]

खंजन है शरमा रही, देख-देख कर नैन।
कोयल भी सकुचा गयी, सुन कर उनके बैन।।

[२७]

सुन्दर, शील, सनेह अरू करूणा आदि अनेक।
अगणित गुण मिल कर रचें, नारी तन मन एक।।

[२८]

जन्म होत बिलखत कुटुम, चन्दा उत, इत रात।
हुइ पत्नी मां फिरि मरै, यह है नारी जाति।।

[२९]

नैन नैन से जब मिलैं, औ नैना हों चार।
नैनों के इस जोड़ में, दिल क्यों जाता हार।।

[३०]

पत्थर तोड़े धूप में, वह देखो श्रमदेव।
तन श्रम जलमय वह दिखे, ज्यों दिखते महदेव।।

[३१]

अंग्रेजी में सोचते, अंग्रेजी के बोल।
अंग्रेजी बढ़ती रही, उन्नति में विष घोल।

[३२]

अंग्रेजी को देश से, चलो निकालें आज।
राष्ट्रभाषा में करें, देश के सारे काज।।

[३३]

बिना राष्ट्र भाषा कभी, राष्ट्र न होता एक।
चिन्तन निर्णय हेतु तू, विश्व पटल को देख।।

[३४]

अपनी भाषा से सदा, ज्ञान के खुलते द्वारा।
अपनी बोली बोल कर, देश हुआ उद्धार।।

[redacted]

[३५]

गेहूं की खेती हुयी, अनुत्पादक आज।
वृक्षारोपण ही समझ उन्नति का इक राज।।

[३६]

वृक्ष बढ़े कीमत बढ़े, हो किसान धनवान।
नासमझों की मत बढ़े, समझे सकल जहान।।

[३७]

कृषि सब्जी की जो करै, वह गरीब नहि होय।
स्वस्थ बनै, सम्पति बढ़ै, कृषक न वैसा कोय।।

[३८]

हल्दी, धनिया, सौंफ की, जो कृषि करै किसान।
कौड़ी से लखपति बनै, जानत चतुर सुजान।।

[३९]

किसान करि खेती मुआ, निकसि रही है हाय।
खाते उसका अन्न सब, वह भूखा सो जाय।।

[४०]

खेती गेहूं की करत पिछड़ा जात किसान।
शुद्ध आय कम होत रे, त्याग इसे नादान।।

[४१]

गांवो के इस देश में, गांव गांव में क्लेश।
गांव मिटैं बाढ़ैं शहर, धन-धन भारत देश।।

[४२]

सोना आवत शहर में, देहाती कहलात।
ठेस लगत, सोना मरत, यह किसान की जात।।

[४३]

गेहूं का मामा हुआ, हरित क्रांति को कंस।
दवा कृष्ण से ही मरै, खेती को यह दंस।।



[redacted]

[४४]
खेती में सोना मिलै, तो मैं जोतुं पहाड़।
सोना था सोना मिला सूखि गए सब हाड़।।

[४५]
हरिजन निर्बल मत समझ, होत बड़ा बलवान।
रामायण रच कर बने, बाल्मीकि भगवान।।

[४६]
शूद्र स्वच्छता कर्म से, मानव करे विकास।
बिना स्वच्छता कर्म के, आवत अवसि विनाश।।

[४७]
धन-धन जे नर शूद्र हैं, हैं महान वे लोग।
यदि तज दें वे कर्म निज, दुनिया भोगे भोग।।

[४८]
मल को स्वच्छ करें वहीं, धरा करें वे पाक।
धरा पाक वे जो करें, वे कैसे नापाक।।

[४९]
हीन भावना क्यों रखें, हीन नहीं यह कर्म।
हीन कहें जे नर इसे, उनको आए शर्म।।

[५०]
नर नर एक समान हैं नहीं जन्म से भेद।
जन्म भेद जे नर करैं, नहीं पढ़े वे वेद।।

[५१]
हिन्दू हित होगा तभी, मिटे जातिगत भेद।
उच्च-निम्न, अस्पृश्यता, का होवे उच्छेद।।

[५२]
जाति प्रथा के व्यूह को, हिन्दू तोड़े आज।
विश्व श्रेष्ठ हो जाएगा, राज कहे यह राज।।

[५३]
ईश्वर से विनती यही, पुनर्जन्म यदि देय।
बाल्मीकि गृह जन्म लूं, जो समाज में हेय।।

[redacted]

मैं हूं असली कवि

कविता अवश्य करते हैं आप
पर हैं नकली कवि।
देखो! मैं जीता हूं कविता,
मैं हूं असली कवि।

आप कागज में कलम से
कल्पना को रूप देते।
मैं हल से खेतों में
स्वयं अल्पना बनाता।

आप सुखों में आसक्त रह,
दूर से पात्र पढ़ते।
मैं दुख अभावों के पात्र,
स्वयं बनता बनाता।

देखो! बिना लेखनी का,
मैं हूं अद्‌भुत कवि।
मैं जीता हूं कविता,
मैं हूं असली कवि।

[redacted]

कभी कुदाल से कभी फावड़े से,
तो कभी हंसिया से कभी हथौड़े सें।
कभी पीठ से तो कभी सिर से,
कुछ न मिला तो नंगे हाथों से।

मैं जीवन की सतंत सजीव,
रचना हूं रचाता।
आप मृत स्याही से भला,
क्या रचोगे सजीव चित्र
मैं श्रम सीकर व लहू से,
स्वयं ही चित्र बन जाता।

लहू ही रंग और स्याही
मैं हूं प्राकृतिक कवि।
प्रकृति से पोषित,
मैं हूं शाश्वत कवि।
मैं जीता हूं कविता,
मैं हूं असली कवि।




[redacted]

कृषक

बैल बँधे घर छांड़ि चला शहरी महलों ढिग आवत होरी।
एक नहीं चंहु ओर मुसीबत घेरत जात बतावत थोरी।।
धान कटे खलिहान पड़े अरु खेत जुतांव पड़े फिर सारे।
रात बिरात कुटुम्ब डरे पर छांड़ि चला तिनहूं घर द्वारे।।
खेत बँटे परिवार कभी अब पेट भरें तब धौं कैसे।
शान घटी जु किसान केरी मुंह ताकत हाय भिखारिन्ह जैसे।।
धोति फटी तन माहि धरे अरु पैरन्ह फाटि गयो अब चामा।
सोचत ''होरी'' जात गरीब बिसारत जात तिया अरुधामा।।

निजखेत जीवन घर बने हर क्षण जिएं मरते वहीं।
मर जायं वे मिट जांय वे पर कृषक वे गिरते नहीं।।
दिन रात वे कर कर मरैं तब कृषक पावत अन्न हैं।
तन ढांपते पर मनुष के पर खुद बिचारे नग्न हैं।।



[redacted]

ग्रामीण

ग्राम निवास करैं जब आप,
कहैं तब ग्राम भयानक भारी।
हाय! कहां अब जाय मरैं
यह सोच रही जनता दुखियारी।।
ठौर नहीं तन वस्त्र नहीं
अरू अन्न नहीं अस जीवन हारी
आह! यही नर गांव गंवार,
दिहाति कहावत पावत गारी।।



[redacted]

उत्तम खेती

उत्तम खेती मध्यम बान,
निषिध चाकरी भीख निदान।
उत्तम खेती कभी कहीं थी?
क्या उत्तम था कभी किसान?

"दूर के ढोल सुहावन होते",
विद्वज्जन इस सत्य को कहते।
जो खेती से दूर हैं रहते,
खेती कार्य सुहावन लगते।।

उत्तम खेती कहने वालो!
तुमने कभी न की है खेती।
हल की मुठिया कभी न पकड़ी,
तुमने कभी न जोती खेती।

तेरे पैर न फटी बिवाई,
तू क्या जाने पीर पराई
सुविधा भोगी कवियों को ही,
उत्तम खेती पड़े दिखाई।

[redacted]

पैर उपनहे कन्धे पर हल,
बदन पसीना पेट में हलचल।
तपती-गर्मी ठंडी ठिठुरन,
जीता मरता प्रति क्षण प्रतिपल।

गर्मी जाड़ा बरसात सहे वह,
खून पसीना एक करे वह।
दैव भरोसे बैठे पर वह,
बना गरीब रहे तब भी वह।

देखो! भिक्षु बना भूस्वामी,
दल-दल में धँस रहा किसान।
ओला सूखा बाढ़ सत्य हैं,
"अन्धी खेती दैव किसान"।

व्यापारी सब सुविधा भोगे,
कहो न मध्यम, उत्तम बान।
निषिध चाकरी मत तुम बोलो,
चाकर को उत्तम सम्मान।

चाकर का ही शासन देखो,
चारों ओर है, नौकरशाही।
चन्दे वोट की भीख मांगना,
इनमें भी है नहीं घटाही।



भिक्षा निन्दनीय तो क्यों?
साधू सन्त भिक्षु बन जाते।
भिक्षाटन ही वे हैं करते,
पर समाज गौरव कहलाते।

कृषि को करने वाले पर क्यों?
जीवन दौड़ पिछड़ जाते हैं।
देहाती, गंवार ही रह क्यों
जीवन भर ठोकर खाते हैं।

फिर कृषि को उत्तम कहते क्या?
तुझको कोई ग्लानि न होती!
उत्तम वह जो रही अगर थी,
क्यों तूने कभी न की फिर खेती?

उत्तम खेती को कहने वालो!
आओ खेती तुम्हीं करो अब।
व्यापार चाकरी भीख कर्म
किसान करेगा, समझो तुम अब।

उत्तम खेती तभी बनेगी,
यदि खेती का मूल्य दिलादो।
बीज, दवा, खाद जल आदिक,
सस्ते में कृषि यन्त्र दिलादो।

[redacted]

कविता खेतों मध्य करो फिर,
क़वि किसान को एक करा दो।
कलम और हल साथ चलें फिर,
फिर खोया सम्मान दिलादो।

कथनी करनी में फिर जब,
भारी अन्तर मिट जाएगा।
उत्तम खेती हो जाएगी,
कृषक भी उत्तम हो जाएगा।



[redacted]

गांव की नारियां

गांव की नारियां बहिरे गयीं, गांव की नारियां बहिरे गयीं।
एक घर से फुलिया मुलिया,
दूजे से निकली शिवकलि़या।
घर तीजे से बड़की भौजी,
निकली ननद साथ हैं सुरजी।
अकेले नहीं जाती हैं कभी, इक इक कर साथ लग गयीं।
गांव की नारियां बहिरे गयीं, गांव की नारियां बहिरे गयीं।

इक की साड़ी चमकदार बड़ी,
दूजे की ठिगरी से जड़ी।
इक की धोती पीली बड़ी,
न धुलने से वह काली पड़ी।
बहुयें पिछौरी ओढ़े चलीं,
घूँघट हाथन काढ़े चलीं।
भांति भांति की नारी चलीं,
जंगल झाड़े नारी चलीं।
स्वावलम्बी हैं नारी सभी, अपने हाथ लुटिया ले गईं।।
गांव की नारियां बहिरे गयीं, गांव की नारियां बाहिर गईं।

[redacted]

खेत जितने गांव किनारे,
शौचालय वे गांव के सारे।
उनकी मेंड़ों में हीं प्रतिदिन,
शौच को जाती हैं वे निशदिन।
मेंड़ों में पास पास ही, शौच करने को वे बैठ गयीं।
गांव की नारियां बहिरे गयीं, गांव की नारियां बहिरे गयीं।

हरवाहे निकले खड़ी हो गयीं,
उनके जाते ही बैठ गयीं।
गांव के मरद कुछ फिर आते दीखें,
तुरत फुरत फिर खड़ी हो गयीं।
कोई के आने पर कोई के जाने पर उट्ठक बैठक लगाती गईं।
गांव की नारियां बहिरे गयीं, गांव की नारियां बहिरे गयीं।

बीमारी पेट की उन्हें फिर नहो क्यों?
कमजोरी, टी०बी० के लक्षण न हों क्यों?
आप भी इनकी दशा पे न रो क्यों?
शौचालय बने गर न गांवों में तो क्यों?
गांव की नारियां हैं थक गईं, जाते जाते बहिरे दुखिया भईं।
गांव की नारियां बहिरे गयीं, गांव की नारियां बहिरे गईं।।

[redacted]

ग्राम भारत

[१]

आह! ग्राम जीवन भी क्या है,
अरे देख! जितना जी चाहे।
तुझको उसकी झलक दिखाने,
कवि गांवों में ले चलता है ।

[२]

सावन के अन्धे को कहते,
चारों ओर हरा दिखता है।
उसी भांति शहरी चश्में से,
तुझको गांव स्वर्ग दिखता है ।

[३]

भीतर की दुनिया देखोगे?
आओ तुमको दिखलाता हूं।
इस चश्में से देख न पाओगे,
फेंको, तुम को समझाता हूं ।

[४]

कितना कठोर जीवन है उनका,
क्या यह कभी कल्पना की है
कलाकार! ओ कविवर! तूने,
बाहर की दुनिया देखी है ।





[redacted]

[५]
क्या किसान अरु क्या मजदूर,
खेतों को जीते, सहते हैं।
पल-पल, तिल-तिल जल-जल कर,
खेतों में ही फिर मरते हैं।

[६]
भोलू, हीरा, राधे, सोहन,
आपस में ही फिर लड़ते हैं।
कोर्ट कचेहरी के चक्कर में,
बिना चैन वे फिर भिड़ते हैं।

[७]
ग्राम जीवन जो सुन्दर लगता,
फिर क्यों नगर में तू रहता है?
ग्राम जीवन जब है अति सुन्दर,
क्यों न गांव में तू बसता है।

[८]
कथनी करनी में अन्तर क्यों?
कवि तेरे अन्दर दिखता है।
कहे गांव की करे नगर की,
व्यंग्य गांव पर क्यों करता है।

[९]
पुलिस की छाया में रहते,
उसकी कृपा से जीते हैं।
गांवों का असुरक्षित जीवन,
भय में सांसे लेते हैं।

[redacted]

[१०]

बलात्कार के सुन्दर स्थल,
गांव गांव में मिलते हैं।
कभी पुलिस औ कभी दरिन्दा,
द्रौपदि-चीर यहां हरते हैं।

[११]

कैसा है यह जीवन इनका?
क्या इसको तूने देखा है?
आह! ग्राम जीवन भी क्या है,
इसको देख हृदय फटता है।

[१२]

समूह संहार यहां ही होते,
डाकू चोर राज करते हैं।
कब किसकी फिर पकड़ करें
वे, कब किसका घर लुटते हैं।

[१३]

क्या कहूं कि कैसे कहां कहां,
लुटती इनकी जीवन रेखा है।
आह! ग्राम जीवन भी क्या है,
स्थल-स्थल यह लुटता है।

[१४]

ग्राम-निवासी, अधिकारी क्या?
चपरासी से भी डरते हैं।
लेखपाल हो या कि सिपाही,
जाल में उनके फंसते हैं।

[redacted]

[१५]

दादा भी हर गांव में मिलते,
कुछ पुलिस दलाल कहाते हैं।
इनके आतंक के साए में,
जीवन दिनरात बिताते हैं।

[१६]

नेता की ह्यां महिमा देखो,
प्रजातन्त्र-प्रहरी बनते हैं।
झगड़े निपटाने हेतु सदा
रगड़े पे रगड़ा करते हैं।

[१७]

नरक न देखा होगा तुमने,
चलो इस गांव लिए चलते हैं।
टांगों कीचड़, गंदे घर, नर
बदबू सीलन में पलते हैं।






[redacted]

बैलगाड़ी

बैलगाड़ी
उस पर बैठा हाड़मांस का ठूंठ
और बैल बलहीन वे भी
चीं चीं चीं चीं की संगीतमय ध्वनि नहीं
चर्र चर्र की कराहट
राकेट युग
ग्रहों में पहुंचता मानव
यह भी राकेट है।
बैलगाड़ी राकेट से भी विशाल कि नहीं– सन्दर्भों में।
एक बेदर्द है।
एक बादर्द है।
दर्द ही भगवान है
वही किसान है
वही हिन्दुस्तान है
देश महान है।

[redacted]

चिताएं

चिताएं बूढ़ी हो गयीं हैं।
उन पर रखी लकड़ियों
की झुर्रियां उभर गयीं हैं।
अब वे चट-चट नहीं जलतीं
फुस फुस फुस फुस की बीमार
मरी सी
गुजरी सी
आवाज आती है उन से
बूढ़ों की चिता होती है जवान
जवानों की चिता को बूढ़ा होना ही था
एक दम ठंडी

जैसे वे.........
वे जो ऊपर से जलती हैं।
लेकिन अन्दर से बूढ़ी
देह बेचतीं
कोठे की वेश्याएं
जैसे बिना घी चन्दन के चिताएं।




[redacted]

कौआ

मुड़वाई में बैठा कौआ
[illegible] है।

कायल काव-काव करता ह।
बिना साइलेंसर के जैसे कोई गाड़ी।
चांदनी रात
घुप अंधेरा– हाथ पैर को नहीं देख पाता।
कौआ चांदी की छड़ी से
कर देता है चमत्कार

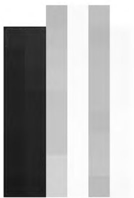
कोयल करती है (यही नियति है) चीत्कार।
कौवे के घोंसले में अंडे देने का
पा रही है प्रतिफल
उसे हरे भरे पेड़ नहीं मिलते हैं–
मिलते हैं नंगे पहाड़
विक्षिप्त नदियां
कंकाल से झरने
प्रदूषित अभिशप्त सागर
सूखी गागर
कौआ अट्टहास कर रहा है
कोयल से कांव कांव भी नहीं हो पाता
गला जो बैठ गया है।
कौवे का अट्टहास गूंज रहा है
अ ट् ट हा स ।

[redacted]

फटा बांस

फटा बांस
जी रहा है या मर रहा है।
उसकी उसांस उच्छ्वास एक ओर
उसकी आश दूसरी ओर
चांद छूने, उठने की उत्कट उत्कंठा
पर आह यह झुकाव
रीढ़ टेढ़ी हो गयी।
क्या तभी फटा
फटना भी शायद आवश्यक था
झुकना भी।

प्रकृति के लिए,
पुरुष के लिए।
ब्रह्माण्ड को संगीत कौन देता?
यदि वह नहीं झुकता, नहीं फटता।
फटकर झुककर बनाया–
उसने प्रकृति को संगीतमय
दी है वीणा, बंसरी।
कृष्ण क्या करते




[redacted]

विश्व को क्या देते
यदि बांस-दर-बांस नहीं फटते
तो लाठी बनते।
लाठी, लाठी, लाठी
फिर........?

[redacted]